सलेस भगत

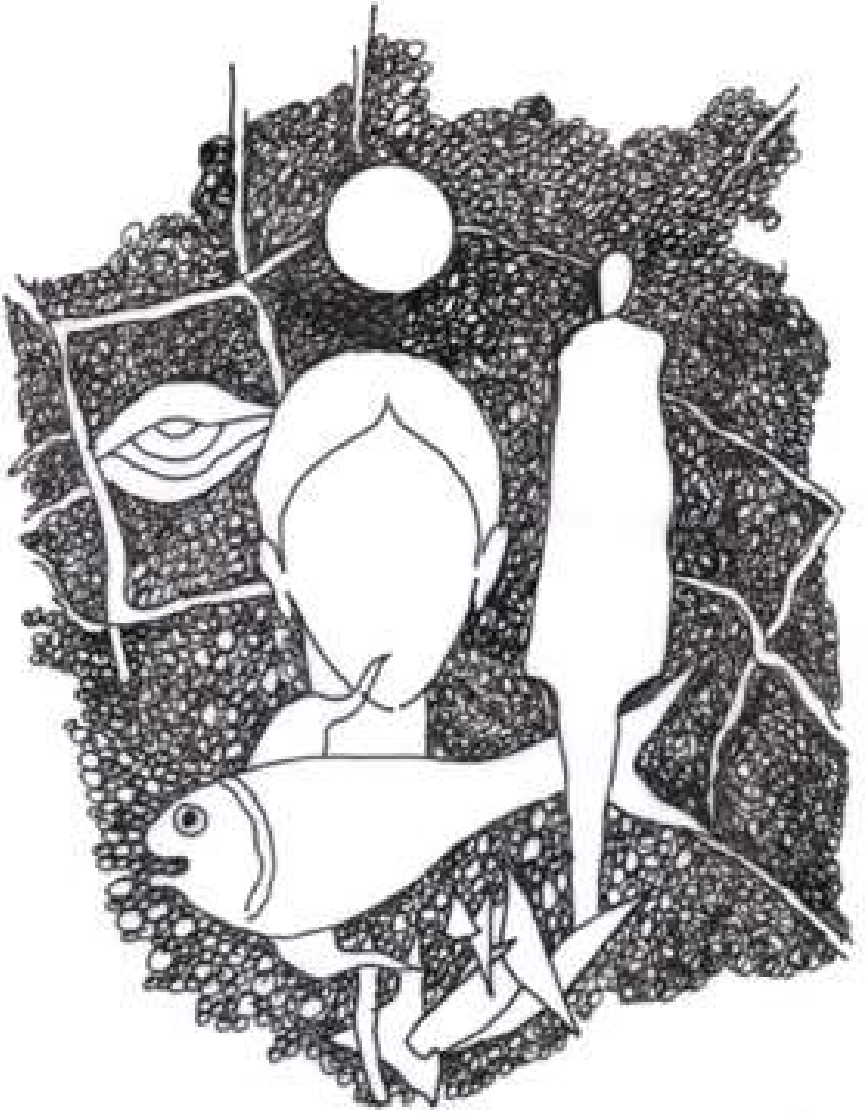

डॉ. अमरेन्द्र

सलेस भगत

सलेस भगत

डॉ. अमरेन्द्र

© Dr. Amrendra

पुस्तक : सलेस भगत
लेखक : डॉ. अमरेन्द्र
संस्करण : फरवरी, ई. २००६
प्रकाशक : अंगिका संसद, भागलपुर (बिहार)
मुद्रक : गीता प्रेस, भागलपुर
मूल्य : ७५ रूपये

SALES BHAGAT (NOVEL) By Dr. Amrendra

उस शक्ति
को
जो सालों से मुझे बेचैन करती रही
इस उपन्यास को पूरा कर लेने के लिए

निवेदन

यह ई. १९८२ की बात है । आकाशवाणी भागलपुर के लिए मैंने एक नाटक लिखा—'सलेस भगत', जिसका प्रसारण १ सितम्बर १९८२ को हुआ । अब मुझे ज्ञात नहीं कि उस नाटक की कथावस्तु लोकगाथा से कितनी मेल खाती थी, और किस अंश तक मेरी कल्पना से वह प्रभावित थी । लेकिन मुझे इतना स्मरण अवश्य है कि उस नाटक का अंत वही नहीं था, जो श्री चकोर और डॉ. चौधरी द्वारा सम्पादित अंगिका लोकगाथा 'सलेस भगत' का है । अपने नाटक में मैंने दिखाया था कि मोरंग पहुँचने पर, कालीकंठ और छेछन को भी खत्म कर देने के लिए धामिनों के पति दौड़ पड़ते हैं, लेकिन वे सभी कालीकंठ और छेछन के शिकार होते हैं । पुनः कालीकंठ और छेछन अपनी तंत्रशक्ति से सलेस को भी दुधिया पोखर से सशरीर निकाल लेते हैं; तब यह जान कर कि धामिनों के पति मारे गए हैं, सलेस राज पकरिया लौटने से इनकार कर देता है—यह कह कर कि अब उसका जीवन विधवा हुयीं धामिनों की सेवा में ही गुजरेगा ।

पता नहीं, यह कथा मैंने किसी से सुनी थी, या मेरे मन की ही उपज थी । जो हो; तब उस लोकपुरुष पर एक उपन्यास लिखने का मन भी बन गया था, वह भी अंगिका भाषा में ही । लिखा भी—पचास पृष्ठों तक, और रुका, तो रुक ही गया ।

आते-आते ई. २००८ की जनवरी आ गई । रंजन जी नटुआ दयाल को पूरा करने पर थे । फिर मन बना कि सलेस भगत को पूरा कर ही लिया जाय,

लेकिन अंगिका में नही, खड़ी बोली में—रंजन जी की ही तरह, और तीन या चार जनवरी को उपन्यास-लेखन शुरु हुआ, तो रुका नहीं । होली का आखरी दिन खत्म हो रहा था, और सलेस भगत का आखरी अनुच्छेद भी पूरा । तीन महिने लगे । लिखता गया; बेटी वसुन्धरा भी उसी मनोयोग से कम्प्यूटर पर उसे कम्पोज करती चली गई । अब उसे एक बार पुनः देखना था—खाई-खाँचे को भरने के लिए । पहाड़ जैसा काम लगा, फिर आठ, नौ महीने तक पांडुलिपि उसी रूप में रह गयी ।

और इसी कारण दूसरा काम आरम्भ भी नहीं कर पा रहा था, कुछ प्रारम्भ करता, तो मन सलेस पर अटक जाता । सोचा—एक बार पढ़ ही लूँ, फिर पढ़ ही लिया । इधर-उधर कुछ करना तो था नहीं । संतोष-सा हुआ । उपन्यास में सलेस वैसा ही उतरा था; जैसे, कोशी नेपाल से चलकर जब अंग प्रदेश की गंगा में उतरती है, तब वह काफी विस्तृत हो जाती है ।

लेकिन इस उपन्यास में मैंने उस लोकगाथा को बहुत दूर तक बचाने की कोशिश की है, जो लोक में प्रचलित है; कुछ बदला है तो इसलिए कि मेरी आत्मा ऐसा करने को प्रेरित कर रही थी, और अब लगता है कि जैसा लिखा गया है, ऐसा ही हुआ होगा ।

उपन्यास छू सका तो ठीक; नहीं तो कोई बात नहीं, क्योंकि यह, एक अउपन्यासकार द्वारा रचा गया उपन्यास ही है ।

—अमरेन्द्र

सम्पर्क : कामायनी
लाल खां दरगाह लेन, सराय
भागलपुर, ८१२००२ (बिहार)

वसन्त पंचमी
१ फरवरी २००९

उपन्यास 'सलेश भगत' कथाकारों की दृष्टि में

इस पुस्तक (सलेस भगत) को पढ़ना शुरू किया कि डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के प्रसिद्ध उपन्यास 'अनाम दास का पोथा' का स्मरण हो आया । डॉ. द्विवेदी ने कथा-वचन के पहले पाठकों के लिए एक भ्रामक माया-जाल रचा है, जबकि 'सलेस भगत' का लेखक सीधे कथा-वाचन शुरू करता है । डॉ. द्विवेदी के चरित नायक ऋषि ऋक्व और 'सलेस भगत' की सदाशयता, निरीहता, सादगी और साध ाना में बड़ा साम्य है, अतः कहा जा सकता है कि लोककथा नायक 'सलेस भगत' में अद्य स्तरीय ऋषि के सारे गुण हैं । डॉ. अमरेन्द्र ने इस लोकनायक के माध्यम से तंत्र-साधना में रत पूर्वी भारत (अंगदेश) की संस्कृति का भव्य उद्‌घाटन किया है । जन साधारण को रंजित करने वाले 'सलेस' को डॉ. अमरेन्द्र ने विचारकों-साध ाकों के बीच उच्च आसन पर बैठाया है, यह लेखक के गांभीर्य का परिचय देता है । लेखक को इसलिये भी बधाई दी जा सकती है कि इस उलझनपूर्ण चरित्रों वाले उपन्यास (मैं इसे उपन्यास ही कहूँगा) में वह निर्लिप्त रहा है ।

—मधुकर गंगाधर

इस उपन्यास को पढ़ते हुए मुझे अनायास डॉ. विश्वम्भनाथ उपाध्याय लिखित दो उपन्यासों 'जाग मछन्दर गोरख आया' और 'सिद्ध सरहपा' का स्मरण होता रहा।

—डॉ. श्यामसुन्दर घोष

कल अमेठी से पटना आते समय 'वैखरी' पत्रिका में प्रकाशित 'सलेश भगत' उपन्यास को पढ़ना प्रारम्भ किया और औत्सुक्यवश बिना रुके पूरा उपन्यास पढ़ गया । इसमें एक कथानक है, जिसको आगे बढ़ाने के लिए कई छोटी-छोटी कहानियाँ जुड़ गई । पुस्तक पढ़ते समय देवकीनंदन खत्री बार-बार स्मरण होते रहे। उपन्यास में तिलिस्म है, साहित्य है और है क्षेत्रीय मान्यता परिपूर्ण किंवदन्तियाँ। इन सब को आपने सरल एवं सरस भाषा में सहजता से परोसा है ।

—जियालाल आर्य

डॉ. अमरेन्द्र ने अपने इस उपन्यास को एक अउपन्यासकार द्वारा रचित उपन्यास कहा है, किन्तु 'सलेश भगत' अनेक लोकगाथात्मक उपन्यासों की तुलना में श्रेष्ठ उपन्यास बन पड़ा है ।

—डॉ. विद्या रानी

हिन्दी में सलेश भगत जैसा श्रेष्ठ उपन्यास का लेखन अब दुर्लभ ही हो गया है। लेखक के नाम चाहे जितने बड़े-बड़े हों,उनके उपन्यास उस तरह से मुझे नहीं बांध पाते, जैसा—संरचना, शैली और विचार के स्तर पर मुझे सलेश भगत ने बांधा।

—उमाकांत भारती

सलेस भगत

छेछन ने अपनी कमर से मूँज की मोटी रस्सी का कटिबंध कसा और भेंड़ के ऊन से बने जनेऊ, जो गर्दन से होकर कमर तक लटक रहा था, उसमें सिंगी बाँधी और ऊपर से कंथा ओढ़ लिया । गेरुए वस्त्र में उसका पीतवर्णी चेहरा और भी चमक उठा था । दोनों कलाइयों में अठारह-अठारह रूद्राक्षों की मालाएँ और गले में एक सौ आठ, चौरासी और चौसठ रूद्राक्षों वाली तीन मालाएँ । गले, छाती और कपाल पर भस्म की मोटी परतें उसे सामान्य से असामान्य बना रही थीं ।

वह ऊँची टांग के पीढ़े से उठा और दायें हाथ में काले पत्थर की तरह चमकता लम्बे सोंटा को उठा लिया । फिर सोटेवाले हाथ को ऊपर तक उठाते हुए मन-ही-मन कुछ बुदबुदाया और बाहर निकल पड़ा ।

जैसे उसकी आवाज सुनकर ही घोड़नी सुअर द्वार पर आ खड़ा हुआ था । छेछन को देखते ही उसने अपनी गर्दन नीचे की, और छेछन उस पर जा बैठा । बैठने भर की देर थी कि घोड़नी सूअर सिझुआ जंगल के बीचों-बीच से तीर की तरह निकलता हुआ सीधे नन्हुआ बाबू सलेस के द्वार पर ही आकर रुका ।

उस समय सलेस द्वार पर ही खस की चटाई पर बैठा था । छेछन को देखा तो उसके लिए बगल में ही पड़े काठ के ऊँचे पीढ़े को सामने कर दिया और मुस्कुराते हुए पूछा, ''आज सवेरे-सवेरे, वह भी ब्राह्ममुहुर्त्त में ? क्या कोई खास बात है छेछन ?''

''हाँ, खास ही बात है ।'' छेछन ने परेशानी के स्वर में कहा ।

''क्या बात है ? कहीं तुम, फिर सामरी के गौने की बात लेकर तो नहीं आ गये हो ?''

''तुमने ठीक ही सोचा मित्र'' पीढ़े पर बैठते हुए छेछन ने कहना शुरू किया, ''तुम्हें मालूम है या नहीं, या कि जान कर भी सारी बातों से अनभिज्ञ बने

हो, मुझे पता नहीं, लेकिन इतनी बात तो है कि तुम्हारी इस स्थिति ने न केवल तुम्हारे घर की, बल्कि मेरे घर की भी शान्ति बिगाड़ कर रख दी है । राजमाता इस बात को लेकर मेरे घर पर किसी-न-किसी के माध्यम से संदेश पहुँचवाती ही रहती हैं और फिर तुम्हारी भाभी मुझसे कहती है कि 'आप अपने मित्र को समझाइए ।' अब उसे कौन समझाए कि समझाया तो उसे जाता है, जो समझना चाहते हो । सोये को तो जगाया जा सकता है, जगे को जगाना मूर्खता ही है ।'' छेछन का स्वर अचानक ही कुछ बदल-सा गया था ।

''यह जानते हुए भी तुम यहाँ आ गये ?'' सलेस ने मुस्कुराते हुए कहा।

''मजाक मत उड़ाओ ! मेरी जगह तुम होते, तो तुम भी यही करते । सुनो सलेस, तुम भी योगी, मैं भी योगी । दोनों ही गृहस्थ । लेकिन तुम्हारी तरह मैं कायर योगी नहीं हूँ । तुम्हारी तरह वंशी रखने वाला येागी भी नहीं हूँ । सिंगी बजाने वाला योगी हूँ । एक बार सिंगी बजा दूँ, तो प्रलय मचा दूँ । तुम्हारी इस वंशी से क्या होना-जाना है । अरे सुनता हूँ, कुरूक्षेत्र में कन्हैया को वंशी छोड़ पाँचजन्य फूंकना पड़ा था । मैं अभी भी कहता हूँ, यह वंशी-उन्सी छोड़ सिंगी फूँका करो ।'' छेछन ने जनेऊ से लटकती सिंगी को दिखा कर कहा था ।

''छेछन, तुम जो भी कह रहे हो, सब सच है । मैं किसी से इनकार नहीं कर रहा हूँ । लेकिन क्या करूँ; मन की गति ही विपरीत दिशा की ओर हो गयी है । तुम गलत नहीं कह रहे हो कि यह उम्र विराग की नहीं है, भक्ति की भी नहीं है; राग की है, शृंगार की है । पर तुम्हीं कहो, मन कोई डोर-डांगर तो नहीं कि उसे उधर हाँकते चलो, जिधर तुम चाहो । फिर डोर-डांगर भी अड़ जाये तो हाँकना मुश्किल । छेछन, यह तो मेरा मन ही है । इसकी गति अब जिस ओर हो गयी है, उधर से लौटा लेना मेरे वश की बात नहीं है । मेरे वश की तो क्या, और मौजमपुर की एक सामरी की भी तो क्या, सौ सामरी भी भ्रमित नहीं कर सकती । अगर वह कर ले, तो मैं विरोध भी नहीं करूंगा । लेकिन मैं जानता हूँ कि जिस व्रत के साथ जुड़ गया हूँ, उसमें क्रोध, हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं है । तुम मुझे जिस बात के लिए राजी करना चाहते हो, जानते हो उसका आरम्भ ही रक्त के उत्सव से होगा, तभी मौजमपुर की सामरी का राजपकरिया में आना संभव है। और यह रक्त उत्सव भला मैं कैसे चाहूँगा ! व्रात्य हूँ, व्रत ही मेरे जीवन का मार्ग हो गया है और जो व्रात्य होता है, वह मन से भी किसी की हिंसा नहीं चाहता, भले ही इस रीति के निर्वाह में उसके सारे सुख स्वाहा होते रहें ।''

''सलेस, तुम्हें अपने लिए नहीं, कम-से-कम राजमाता के लिए तो ऐसा करना ही पड़ेगा । सौ सपनों को लिए उन्होंने तुम्हारी शादी की थी । इसलिए न

कि घर की किलकारियाँ कभी खत्म नहीं हो, और एक तुम हो कि मौजमपुर की बातें सुनते ही वैशाख का खेत-खलिहान हो जाते हो, जबकि तुम्हारे चेहरे पर फागुन-चैत की बयार बहनी चाहिए ।'' छेछन ने कुछ झुंझलाते हुए कहा ।

''इसमें गुस्साने की कोई बात नहीं मित्र'', सलेस ने नम्र स्वर में ही कहा, ''मैं तुम्हें पहले भी कह चुका हूँ, अपने किसी भी सुख के लिए मैं उस मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकता, जिस पर पाँव रखने से पहले ही पाँव रक्तरंजित हो उठे । छेछन, मनुष्य इसलिए श्रेष्ठ होता है कि वह विनाश को, महाविनाश को, अपनी हानि को सहते हुए भी उसे घटित होने से रोक लेता है । अगर मैं ऐसा कर सकता हूँ तो मौजमपुर की सामरी को भी ऐसा ही करना चाहिए, ऐसा ही सोचना चाहिए । यह अधर्म को और भी पल्लवित होने को प्रोत्साहित करना नहीं है, बल्कि अधर्म को उकसाने की जगह उसे शांत ही रहने देने का उपक्रम है । राख के अन्दर दबी हुई आग अगर ऊपर उठ गयीं है तो किसकी-किसकी बस्तियाँ जलेंगी, किसके-किसके घर, कौन जानता है !''

''सलेस, बुरा नहीं मानना, तुम्हारी बातें मुझे किसी पुरुष की बातें नहीं लगतीं । क्या तुम मौजमपुर के दुराचारी राजा कनक सिंह से सचमुच में डर गये हो; और क्या इसी कारण भाभी का गौना नहीं कराना चाहते ? अगर यही बात है तो तुम मुझे साफ-साफ कहो !'' छेछन की बातों में उत्तेजना थी ।

''अब तुम जो भी समझो । और अगर इससे ज्यादा समझना नहीं चाहते, तो यही सही है । मुझे बार-बार द्विरागमन की स्मृति से व्यथित, व्याकुल मत किया करो । व्रात्य होने के नाते मुझे समस्त विकारों से मुक्त होकर ही जीना पड़ेगा और मुझे इस पथ से कोई विचलित भी नहीं कर सकता । जीवन के सहज मार्ग में जो सहज प्राप्त होगा, जो मेरे लिए है, उसे अस्वीकार नहीं करूंगा, लेकिन उस सुख के लिए कभी चंचल नहीं होऊँगा, जो मेरा नहीं है, मेरे लिए नहीं है । यहाँ तक कि प्राप्य अप्रीतिकर लगेगा, तो उसका मोह भी मुझे कभी नहीं बांधेगा ।'' कहते-कहते सलेस की आँखें अपने-आप क्षण भर के लिए बंद हो गयीं, जैसे कुछ अनसुलझे प्रश्नों को वह सुलझाने लगा हो ।

''मित्र, तुम्हारी बातें मुझे कभी समझ में नहीं आईं । मैं चलता हूँ, लेकिन जाते-जाते मेरी मोटी बातें भी दिमाग में खोंस लो कि तुम्हारा यह एकान्तिक सुख-मार्ग तुम्हारे परिवार को सुख नहीं दे सकता । और पूरे परिवार को दुःखित रख कर अगर तुम्हें इस मार्ग में घोर सुख भी मिल जाता है, तो भी यह सुख घोर हिंसक है । तुम्हारे छोटे भाई मोतीराम को ही नहीं, तुम्हारे भांजे कालीकंठ को भी तुम्हारे भाव ने उतना ही छिन्न-भिन्न कर रखा है जितना

राजमाता को.....पुरुष तो वही होता है जो अन्याय का उच्छेदन कर सत् समाज के सुख को उससे छीन लेता है—भले ही वह पुरुष गृहस्थ हो या सन्यासी । समझे सलेस !''

लेकिन सलेस ने अपनी आँखें नहीं खोलीं । जैसे वह छेछन की बातों से कहीं दूर, और ही दुनिया के आलोक से अभिभूत हो रहा हो । ऐसा आलोक, जो उसकी आँखों में हठात् ही कभी-कभी खिल उठता है ।

तब वह उसे ही पहचानने, जानने की कोशिश करने लगता है कि आखिर कहाँ, कब, उसने यह प्रकाश देखा था । सोचता ही रहता और भौंहों के बीच में आलोक की उस छवि को जमा कर निहारता ही रहता । उसे लगता कि भ्रू मध्य पर शिव की तीसरी आँख खुल गयी हो और वह एकदम विभोर हो उठता ।

उस समय भी उसे ऐसा ही लग रहा था । तब आँखें कैसे खुलतीं । और जब उसकी आँखें खुलीं तो छेछन जा चुका था ।

कब गया ? जाते समय कुछ कह भी गया क्या ? उसे कुछ भी मालूम न हो सका, और न उसके इस तरह चले जाने का दुःख ही उसके चेहरे पर उभरा। जैसे, अभी कुछ देर पहले, न तो उसकी किसी से कोई बात हुई थी, और न कोई उसके पास आया ही था ।

सलेस ने कमर में बंधी वंशी निकाली और प्रसन्न भाव से उसे उपने निचले अधर पर रखी । उसकी पलकें फिर भोर के किसी सुनहरे स्वप्न की तरह बंद हो गयीं और तिरने लगी वंशी की धुन । आन्दोलित होने लगा राज पकरिया का रोम-रोम । हवाओं की गति मंद पड़ गयी, जैसे बहने की दिशाएं भूल गयी हों । नदी की लहरें ठहरी-ठहरी-सी हो गयीं, और बड़े-बड़े वृक्षों की डालियों की आन्दोलित पत्तियाँ भी सहसा स्थिर ।

कैसा जादू घिर आया था । राज पकरिया के नर-नारी ही क्या, पत्थर-पानी से लेकर विशाल वृक्ष तक अपनी रगों में बहते हुए संगीत को अनुभव कर रहे थे । मध्य रात के पहर तक वंशी बजती रही । मध्य रात के पहर तक राज पकरिया एकदम बेसुध बना रहा ।

२

''क्या बात है जीरुआ, तुम्हें सुबह से ही अनखिन देख रही हूँ । चित्त चंचल । यहाँ हो कर भी जैसे कहीं और हो । आँखें कुछ ढूंढती-सी, जैसे कोई अनमोल

स्वप्न को खो आई हों, न देह की सुधि, न शृंगार की । क्या देख आई हो ?''

''यह मत पूछो, मैं चाहूँगी, तो भी बता नहीं पाऊँगी । अभी तक बस यही लगता है कि वह जैसे स्वप्न था । सच तो हो ही नहीं सकता ।''

''माना कि वह झूठ ही था, अब उस झूठ के बारे में ही तो कुछ बताओ मेरी बहन ।'' पचुआ मुस्कुराती हुई बोली । और दोनों हाथों को कुछ इस तरह ऊपर-नीचे करने लगी, जैसे दो गेंदों को दोनों हाथों से इधर-उधर कर रही हो । गेंदे दिखाई नहीं पड़ रही थीं; लेकिन पचुआ की विद्युत गति से उठती-गिरती आँखों से साफ जाना जा रहा था कि गेंदे ऊँची और तेजी से इधर-उधर हो रही थीं ।

''छोड़ो, नहीं बोलोगी तो नहीं, मैंने सब कुछ जान लिया है ।'' पचुआ ने हाथों की गति को रोकते हुए कहा ।

''वह तो मैंने तभी समझ लिया था, जब तुम चित्ती-कौड़ियाँ उछाल रही थी । लेकिन जान लो पचुआ, मैं जो देख कर आई हूँ, उसे तुम इस जादू से तो क्या, सौ मन डकरा जादू को भी बोझ दो, तो न देख पाओगी ।'' जिरुआ ने मुग्ध आँखों से कहा ।

''छोड़ो, छोड़ो, सुनो मैं सुनाती हूँ । कल तुम ठीक आधी रात में निकली थी ?''

''हाँ ।''

''और फिर यूँ ही टहलते-टहलते कोशी को पार कर गंगा के किनारे तक चली गयी थी ?''

''हाँ, यह भी सही है ।'' जीरुआ ने स्वीकार में सर हिलाया था ।

''और फिर तुम्हें वहीं पर वंशी की धुन सुनाई पड़ी थी ? तन-मन को मरोड़ कर रख देने वाली वंशी की धुन ? तुम्हें लगा था कि तुम्हारी देह सेमल की रूई-सी हो गयी है ? हो भी गयी थी और तुम उसी संगीत की डोर पकड़ कर गंगा को पार कर गयी थी, उन्मत्त नागिन-सी लहराती ।'' पचुआ ने रुक-रुक कर कहा तो जीरुआ ने भी स्वीकार में रुक-रुक कर सिर हिलाया ।

''और मेरी बहन जीरुआ, स्वयं ही डकरा जादू से बंधाए किसी मेमने की तरह उसकी ओर खिंचती चली गयी, जब तक कि वह नन्हुआ बाबू सलेस के सामने न थी ।''

''लेकिन तुम्हें इतनी सारी बातें कैसे मालूम ?'' जीरुआ की जैसे हठात् ही नींद खुली हो ।

उसे इस तरह चौंकते देखा तो पचुआ खिलखिला कर हँस पड़ी, कुछ इस

तरह कि उसके दाँतों की मिस्सी तक चमक उठी ।

''अरे पगली, तुम्हें याद भी है कि रात में तुमने कस्तूरी-स्नान किया था । एकदम भरखर रात में; जब मेरी नींद खुली तो मैं अवाक् । दालान और आंगन के द्वार खोल कर बाहर आई और बैशाख-जेठ की पछिया हवा की तरह दौड़ पड़ी गंध के पीछे-पीछे । कोशी पार किया, गंगा पार किया और फिर बड्डुआ की उफनती धार । सब पार कर तुम्हारे पास पहुँची तो देखा—तुम मंदिर की ओट से एक वंशीवाले को पत्थल बनी देख रही हो...मैंने भी उस वंशीवाले को गौर से देखा था....।''

''क्या देखा तुमने ?'' जिरुआ के स्वर में जैसे कुछ चिन्ता उतर आई थी।

''वही जो तुमने.....रेशमी वसन में विभूषित एक बत्तीस वर्ष का युवक कमर से धोती चादर की तरह लिपटी और रेशम का एक उत्तरीय, गर्दन से आकर ठेहुने तक पसरा हुआ । रेशम वसन का ही मुरेठा । पूरा शरीर, जैसे हल्दी का रंग लिए चूना-पत्थर की कोई दिव्य मूर्ति । यूँ कहो कि धरती पर जैसे चाँदनी रात में कोई देवदूत बैठा था । सच कहूँ, हम दोनों ने सौ-सौ खूँटे में जिन देवताओं को बाँध रखा है, उनमें एक भी उस पुरुष जैसा नहीं है । ....जीरुवा, मन की बात कहूँ—उसे तो देखते ही मैंने उसे अपना स्वामी मान लिया'' पचुआ ने दायीं हथेली को बायीं हथेली पर पटकते हुए कहा, ''और जब स्वामी मान ही लिया तो समझो वह मेरा स्वामी और मैं उसकी स्त्री ।''

''ठहरो, समझ रही हो कि तुम क्या बोल रही हो ?'' जीरुआ आवेश में आ गयी थी ।

''इसमें क्रोध करने की क्या बात है । मुझे मालूम है कि तुमने भी उसे अपना स्वामी स्वीकार कर लिया है । तो इसमें आपत्ति क्या है, अगर वह हम दोनों का स्वामी बन कर रहता है । अरे, हम दोनों भी तो कहने के लिए दो बहनें हैं, हैं तो एक ही । एक साथ, एक समय में माँ ने हम दोनों को जना है । न उम्र में फर्क, न रूप में । कभी किसी बात में भेद नहीं आया, न सुख में, न दुःख में । फिर आज यह भेद कैसा ?''

जीरुआ ने पचुआ की बातें सुनीं तो उसका आवेश उतरने लगा ।

चेहरे पर पश्चाताप का भाव देखा तो पचुआ ने अपनी बातों को आगे बढ़ाते कहा, ''और तुम यह भी मत सोचो कि अकेले ही उस मर्द को वश में कर लोगी । ऊपर से जितना तरल दिख रहा था न, भीतर से उतना ही कठोर है । मुझे नहीं लगता है कि तुम्हारे रूप और ताकत का कोई असर उस पर होनेवाला है ।''

''भला यह तुम कैसे कह सकती हो ?''

''तुम जब वहाँ से लौट रही थी, तब क्षण भर के लिए मैं और ठहर गयी थी । अपनी सारी रूप-छटा को लेकर सामने खड़ी हो गयी थी । जानती हो, उसने मुझे देखा तो जरूर, लेकिन चेहरे पर कोई भाव भी आया हो; वह नहीं हुआ था । पत्थर से भी ज्यादा कठोर मन है उसका । वंशी बजाता है, शायद इसीलिए आदमी है, नहीं तो वह सचमुच में पत्थर की मूर्ति ही है जीरुआ, पत्थर की मूर्ति।''

जीरुआ ने पचुआ की बातें सुनीं तो उसके चेहरे पर नई चिन्ता का भाव उभर आया । एक नया प्रश्न आँखों में तैरने लगा—तो उस पुरुष को कैसे पाया जा सकता है ? मन में कहा

''अगर वह वश में होगा, तो हमदोनों की बुद्धि और बल से । व्याकुल मत हो जीरुआ । हाँ, पहले तुम्हें यह कहना होगा कि वह हम दोनों का ही स्वामी होगा, क्या यह तुम्हें मान्य है ?''

''अब यह कोई प्रश्न नहीं है । अब तो मिलकर उसे यह मनवाना है कि हम दोनों उसकी स्त्रियाँ हैं ।''

इस बात पर दोनों बहनें इस तरह खिलखिला कर हँस पड़ीं, जैसे अभी कुछ क्षण पहले उन दोनों के बीच, अधिकारों को लेकर, कोई भेद ही नहीं उत्पन्न हुआ हो । तनाव तिनके की तरह हँसी की खुली हवाओं में उड़ गया था । कुछ अगर बच गया था तो बस बार-बार की गलबाँही और गुदगुदी का उन्माद ।

३

''आज सातमा दिन है । सलेस को मोरंग लाने का कोई उपाय नहीं दिख रहा है । मैं ही नहीं, जीरुआ भी कई बार राज पकरिया हो आई; पर नतीजा क्या निकला ! लगता है, जब तक राज पकरिया से ही स्वामी सलेस को बाहर नहीं किया जाता, तब तक उस पर हमारा कोई असर नहीं होने वाला । संभव है, पकरिया की मिट्टी में ही ऐसा कुछ जादू हो, जहाँ हमारी ताकत कुछ काम नहीं करती । अगर स्वामी सलेस को उस भूखंड से बाहर निकाला जा सके, और उसे मोरंग तक ले आएं, तब तो यह किसी तरह भी संभव नहीं कि वह हमारे वश में न हो....'' पचुआ लगातार मन में बोलती जा रही थी, ''लेकिन उसे मोरंग कैसे लाया जा सकता है ? आखिर वह मोरंग आना भी क्यों चाहेगा ? उसे अब तंत्र-मंत्र भी तो नहीं सीखना कि उसका मोह उसे यहाँ तक खींच लाए । यह भी

नहीं होगा कि भूले-भटके सैर करने के ख्याल से ही इधर भटक आए । बीच में अंग प्रदेश की ये दो महानदियाँ—गंगा और कोशी, सपने में भी ऐसा होने देंगी क्या ? लेकिन यह तो होना ही पड़ेगा । नहीं तो सपने की बलि पड़ जायेगी....''

व्याकुल हो उठी पचुआ । पलंग पर झटके के साथ उठ बैठी । जीरुआ को झकझोर कर उठाया और कहा, ''सुनो, हमें आज ही मध्य रात को गाजीपुर पत्तन की ओर चलना है ।''

''लेकिन क्यों ?''

''इसे तुम बाद में स्वयं ही जान जाओगी ।''

और फिर दोनों सोलह बीघा के दलान से नीचे उतर आँगन में आ गयीं । मुख्य द्वार के हुड़का को खोला । बाहर आईं । बाहर से झिझिर चढ़ाई और वायुवेग से दक्षिण दिशा की ओर बढ़ चलीं ।

''वहीं से हम पुकारेंगे तेलडीहा की भगवती को । इसके सिवा कोई रास्ता नहीं ।'' पचुआ ने जीरुआ की ओर देखते हुए कहा ।

''मैं भी यही सोच रही हूँ । हिचकिचाहट थी तो बस इसीलिए कि भगवती इस बात के लिए तैयार होगी भी या नहीं ?''

''क्यों नहीं होगी ?''

''इसीलिए कि स्वामी सलेस पहले से विवाहित है ।''

''बस, बस; तुम्हारी सारी बातें समझ में आ गयीं । ऐसा कुछ नहीं सोचो, जो रूप को विरूप करता हो । शंकाओं से भरे विचार या कार्य का अंत भी दुर्भाग्यपूर्ण और दुःखदायी होता है । हमें तो बस यह सोच कर चलना है कि हम विजयी होने के लिए निकल रहे हैं और विजयी होकर लौटेंगे । ऐसे ही व्यक्ति की जीत भी निश्चित होती है । बोलो, मैं झूठ कह रही हूँ ।''

''बिल्कुल नहीं, लेकिन तुमसे एक गलती हो गयी ।''

''वह क्या ?''

''वह यह, कि तुमने ये बातें राज पकरिया में क्यों नहीं कही थीं । पीछे छुप कर खड़ी क्यों रह गयी थी । मैं तो तभी स्वामी सलेस को बाँक-बूटी चोली में बाँध कर ले आती ।'' जीरुआ ने यह कहते हुए एक मुस्कान भरी ।

''ठहरो जिरुआ, संकल्प मजबूत जरूर रखो, लेकिन यह उतावलापन ठीक नहीं । मनुष्य का उतावलापन उसके भाग्य का सर्जक नहीं होता । तुम्हें मालूम है, इसी उतावलेपन के कारण, तुम्हें इसका भी ज्ञान नहीं रहा कि बिना क्षमा मांगे तुम मैया कोशी को लांघ गई हो ।''

''क्या ?'' जीरुआ की आँखें फैल कर रह गयीं ।

''मैं झूठ थोड़े ही कह रही हूँ । पीछे मुड़कर तो देखो ।''

दोनों ने पीछे मुड़कर देखा, कोशी की धार तड़ित वेग से बही जा रही थी, अपने पीछे महाप्रलय का शोर छोड़ती हुई ।

जीरुआ की आँखों में ढेर सारे प्रश्न एक साथ इक्कठे हो गये । और किसी भावी दुर्घटना से वह भयभीत भी मन में कहा, ''कहीं कोई अनिष्ट न घट जाए.....ऐसा ही तो हुआ था—गुरु गोरखनाथ मौलश्री वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ थे और इसका ख्याल किए बिना ही कानपा आकाश मार्ग से निकलते गए थे.....गुरु गोरखनाथ ने छाया देखी, फिर ऊपर की ओर देखा और अपने ऊपर से कानपा को गुजरते देख क्रोधित हो उठे.....क्रोध में ही अपना खड़ाऊँ उनकी ओर फेंक कर उन्हें धरती पर उतार लिया था'' सिहर उठी जीरुआ ।

''बीती बात को याद कर डरो मत । मुझे पता था कि तुम्हारे मन पर स्वामी सलेस का जादू कैसे काम कर रहा है । ऐसे में खुद की रक्षा का ख्याल भी तुम्हें कहाँ था । इसीसे मैंने तुम्हारी ओर से क्षमा ही नहीं मांगी थी, बल्कि तुम्हारी देह को रूई से भी अधिक हल्का कर दिया था । तुम्हें पता भी है कि तुम कोशी की धार पर कागज की बजरी की तरह पार उतर आई हो ।.....लेकिन अब छोड़ो भी इन बातों को । आगे देखो, आगे कोस भर की दूरी पर वह गंगा है । सुबह भी होने को है ।''

''सब ओर से निश्चिन्त होते हुए जीरुआ ने कहा, ''और पार उतर कर गंगा स्नान भी होना है । एकदम पवित्र मन से गुहार करनी है, वरना तेलडीहा से भगवती हिलडुल भी नहीं करने वाली । भले ही पाँचो बहने भगवती लाख क्यों न मनाए ।''

४

''सुन रही हो, जीरुआ-पचुआ गाजीपुर पत्तन पहुँच गयी है ।'' भगवती ने आहिस्ता-आहिस्ता सर हिलाते हुए पाँचो बहन भगवती से कहा ।

''वह तो हमलोगों को भी पता है । लेकिन किसलिए ? कहीं दोनों सलेस पर आसक्त तो नहीं हो गई हैं?'' हींगा ने पूछा

''ठीक ही तुम्हारा अनुमान है मालती । लेकिन यह कैसे संभव है ? नन्हुआ सलेस की तो मौजमपुर की राजकुमारी सामरी से शादी हो चुकी है । गौना नहीं हुआ तो क्या । गौना तो आज न कल होगा ही ।''

''लेकिन जीरुआ-पचुआ जो जी में ठान कर आई है, उसे वह छोड़नेवाली भी तो नहीं ।'' शीतला ने बीच में टोकते कहा ।

''वह तो तुम ठीक ही कह रही हो । लेकिन ये बहनें जो चाहती हैं, उसे मैं पूरा कैसे कर सकती हूँ । माना कि दोनों बहनें मुझे बेटियों से भी अधिक प्यारी हैं । दोनों के लिए मैं प्राण भी दे दूँ, लेकिन इसीलिए, किसी के सिन्दूर को दोनों की मांग पर कैसे रखवा दूँ ! नहीं, यह नहीं होगा ।''

''लेकिन इतनी बातें हमलोग सोचें ही क्यों ? यह भी तो जान लें कि दोनों बहनों के मन में आखिर क्या ?'' धनसर ने बीच में कहा ।

''वह तो वहाँ जाने पर ही हम सब जानेंगे ।'' गहेली अब और कुछ कहती कि फुलसर ने कहा,

''वैसे हमलोग चल कर देखें तो, इस समय दोनों कर क्या रही हैं ।''

शीतला का इतना कहना था कि भगवती ने कमर से नीलमणि-सा शीशा निकाला और उसे आकाश की ओर उछाल दिया । कुछ क्षणों के बाद जब वह उसकी जुड़ी-फैली हथेलियों पर गिरा, तब सभी उसी शीशे की ओर झुक पड़ीं । देखा शीशे के मुख्य समतल भाग पर छायाएँ चंचल हो रही हैं । उन छायाओं में जीरुआ-पचुआ की भी छवियां हैं । दोनों ही कापालिक भेष में थीं, मंत्र का मौन उच्चारण कर रही हैं उपांशु जप में लीन । सिर्फ अधर हिल रहे हैं, लेकिन ध्वनि को जानना कठिन । बस इसकी प्रतीती भर कि किसी मंत्र की अविराम पुनरावृत्ति हो रही हैं । केशपाश सिंर के ऊपर, रूद्राक्ष की मालाओं से बंधकर, शिव की जटाओं-से लगते हैं । गले में मध्यम आकार के मनकों की कई-कई मालाएं । और चन्द्रमणि काया—जैसे कासाय वस्त्र में लिपटी संगमरमर की दो मूर्तियाँ जीवित हों । दोनों के सामने काँसे के दो खप्पर । खप्पर में आन्दोलित होती मदिरा । दो कमल पत्रों पर ढेर-ढेर अड़हुल के पुष्प । दो हाथ की दूरी पर भगवती की मूर्ति है । दोनों के हाथ एक समान अन्तराल पर उठते हैं और पुष्पदान के बाद खप्पर पर जा टिकते हैं । जो कुछ भी हो रहा है, वह एक आलोक-मण्डल के बीच । मौलश्री वन के चारो तरफ सघन अंधेरा-सा है कि दिन में भी किसी की दृष्टि न पड़ सके ।

भगवती ने पाँचो भगवती से कहा, ''कुछ देखा तुमलोगों ने ?''

''हाँ, वही सब; जो तुमने देखा । रूद्राक्ष और रक्तवसन में जीरुआ-पचुआ का दमकता गौरवर्ण । चेहरे पर चन्द्रछटा, होठों पर मंत्रप्रभा.....।''

''तब तुमलोगों ने नहीं देखा ।'' भगवती ने बड़ी बेचैनी में कहा, ''मैंने देखा कि दोनों बहनों के चन्द्रमा-से चेहरे पर क्रोध और पश्चाताप का श्याम रंग

गहराता जा रहा है । दोनों के बदन न जाने कौन-से आवेग से आन्दोलित हैं.... न जाने किस क्षण क्या कर बैठे.....सप्ताह से साधना पर बैठी हैं, न उठी हैं, न आँखें खोली हैं....अब एक पल के लिए भी हमलोगों का यहाँ ठहरना अनिष्टकर होगा ।'' यह कहते हुए भगवती वेग से उठ खड़ी हुई और दुरखम खाती गाजीपुर पत्तन की ओर बढ़ गयी ।

पीछे-पीछे पाँचो भगवती भी दुरखम खाती भागी जा रही थीं । कि हठात ही भगवती रुक गयी ।

''क्या हुआ ?'' पाँचों बहनें एक साथ बोल पड़ीं ।

''वही, जिसका मुझे भय हो रहा था । जीरुआ-पचुआ ने पहले तो अपनी गर्दनें मलकाठ में कसीं, फिर अपने ही हाथों अपनी गर्दनों पर काता चला कर उन्हें धड़ से अलग कर दिया है ।'' कहते-कहते भगवती की आँखें छलछला आयीं ।

''यह तो बहुत बुरा हुआ । अब क्या होगा ?'' घोर अवसाद में पाँचो बहनें एक साथ बोल पड़ीं ।

''विचलित होने से तो और भी दुर्भाग्य गहराया । संकट में धैर्य और क्रिया ही संबल होते हैं । तुमलोग गाजीपुर पत्तन वायुवेग से पहुँचो, जहाँ जीरुआ-पचुआ के सर और धड़ पड़े हैं । उन्हें तब तक जोगना, जब तक मैं नहीं आ जाती हूँ । बस आँधी-पानी को आने से रोकना है । कटे अंगों से धूल-पानी न लगे । तुम सबों के पहुँचते न पहुँचते मैं भी पहुँच जाऊँगी ।'' और यह कह कर भगवती दक्षिण की ओर बवंडर-सी बहती गयी ।

लौटी तो जीरुआ-पचुआ के रक्तरंजित धड़ों से खून की धार अब भी बह रही थी । यह देखते ही भगवती के चेहरे पर आशाओं का तेज उभर आया। कहा, ''अभी दोनों बहनों की काँखें गरम है ।'' कदली-पत्रों पर कटे शरीरों को रख कर बड़ी सावधानी से एक-एक कर दोनों सरों को धड़ों से जोड़ने लगी । एक-एक नस को एक-एक नस से मिलाती हुई । ज्यों-ज्यों नसें जुटती जा रही थीं, वैसे-वैसे भगवती और पाँचो बहनों के चेहरे पर खुशी की चमक भी बढ़ती जा रही थी । कुछ ही देर के बाद दोनों बहनें कदली-पत्रों पर सोई-सी लग रही थीं । भगवती नें दोनों पर अलग-अलग चादरें रखीं और स्वर्णपात्र में रखे दूध-सा सफेद अमृत रस को छिड़कने लगी । पूरी तरह से भींग जाने तक ।

''अब किसी भी तरह के भय या शंका की बात नहीं रही । उधर आकाश में सूर्य उतरेगा, और इधर दोनों बहनों के शरीर में प्राण । उधर धरती पर किरणें हंसेंगी और इधर जीरुआ-पचुआ के होठों पर बोल । बस, सौ योजन

तक किसी भी विपरीत शक्तियों को प्रवेश नहीं करने देना है ।'' भगवती ने आंखें उठा कर देखा तो सोलह सौ योगिनियां, चौदह सौ डाकिन, अपने-अपने हाथों में खप्पर और वोड़नी लिए सौ योजन तक की सीमा घेर कर खड़ी हो गयी थीं । योगिनियों-डाकनियों से बंधा देश और काल का एक विशाल वृत—वृत के बीच में अद्वितीय चमकते कुछ नक्षत्र ।

सचमुच में अभी भुरकवा ठीक से दिखा भी नहीं था कि चादरों को हटाती दोनों बहनें उठ खड़ी हुयीं और भगवतियों को सामने देख आवेश में बोल पड़ीं, ''जब तुमलोगों को मेरे सुख-दुख से कोई लेना-देना ही नहीं, तो हमें पुनरजीवित करने का यह उद्योग ही क्यों किया ?''

''लेकिन तुम दोनों का दुख क्या है, यह भी तो मैं जानूं ।'' भगवती नें दोनों के माथे पर अपने हाथों को फेरते कहा । हाथों का वात्सल्यपूर्ण स्पर्श पाते ही दोनों का सारा आवेश जैसे उतर गया, फिर भी तुनकती हुई जीरुआ बोली, ''हम कुछ बोलें, इसके पहले तुम्हें सत् करना पड़ेगा कि तुम अपने कहे वचन को पूरा करोगी ।''

''हाँ, तभी हम बोलेंगे । भले ही दिया हुआ जीवन वापिस लेलो ।'' पचुआ ने भी पाँचो बहन भगवती को देखते कहा ।

भगवती ने शीतला, मालती, गहेली, फुलसर, धनसर को प्रश्न भरी आँखों से घूमते हुए देखा । सभी की आँखों में एक ही भाव देखा तो घूम कर भगवती ने कहा, ''मैं सत करती हूँ, कहो तुम दोनों का दुख क्या है ?' भगवती के दोनों हाथ आशीष देने की मुद्रा में आ गये थे ।

''तो सुनो, ठुट्ठी राज पकरिया के सलेस को हमें दिला दो । हमदोनों ने उसे अपना स्वामी मान लिया है ।'' जीरुआ-पचुआ एक साथ ही उत्साह में बोल पड़ी ।

और यह सुनना था कि भगवती के चेहरे से फिर सारी चमक उड़ गयी, जैसे पूर्णमासी के चाँद पर गहन की घोर छाया उतर आयी थी ।

''नहीं, यह किसी तरह नहीं हो सकता ।'' भगवती ने अपने दोनों हाथों को खींचते हुए कहा था, ''मैं अंग देश की कुलदेवी हूँ, अपने पुत्रों का अहित नहीं कर सकती ।''

''लेकिन, हम सब भी तो तुम्हें अपनी माता समझते हैं । हम सन्तानों का भी तो तुम अहित नहीं चाहोगी ।'' जीरुआ ने पुनः अपने आवेश को संचित करते हुए कहा था ।

''तुम ठीक कहती हो, लेकिन नन्हुआ बाबू सलेस विवाहित है, और उसे

मैं तुम दोनों को कैसे सौंप सकती हूँ ?'' भगवती की आँखों में अजीब-सी परेशानी उभर आई थी ।

''देखो, भगवती माँ, हमलोगों के लिए पुरुष सिर्फ पुरुष है, वह विवाहित या अविवाहित नहीं होता । हमें इससे भी कोई मतलब नहीं कि सलेस एक पत्नीव्रत का उपासक है या बहुपत्नीव्रत का । हम किसी में कुछ भेद नहीं करते, भेद तो भेदबुद्धि वाले करते हैं ।'' पचुआ ने जीरुआ की बातों को बल देते कहा।

''तुम्हारी बातों का विरोध नहीं है । लेकिन जब मैं अंग की सन्तान की ही सुरक्षा नहीं कर पाऊँगी, तब मैं अंग की कुलदेवी भगवती कैसे हूँ ?''

''अगर तुम सलेस को हमें सीधे-सीधे नहीं दे सकती, तो ऐसा करो, उसे गंगा के पार उतार दो । तुम अंग की भी माँ बनी रहोगी और जग की भी । तुम्हें भी दुख नहीं होगा और हमें भी हमारा सुख मिल जायेगा । इससे तुम्हारा सत भी तो बच जायेगा ।''

''चलो, नहीं चाहते हुए भी, इतना मैं जरूर करूँगी ।'' भगवती के दोनों हाथ फिर आशीर्वाद की मुद्रा में उठ गये थे ।

पाँचो बहन भगवती आश्चर्य चकित थीं—लेकिन भगवती और जिरुआ-पचुआ के चेहरे पर असीम सुख की रक्तिम लालिमा थी, जैसे सुबह के सूर्य की सारी लालिमा उन तीनों के चेहरों पर ही आ कर सिमट गयी हो । भगवती ने एक क्षण के लिए आंखें बन्द कर पुनः खोलीं तो, वहाँ कहीं कोई नहीं था, न सौ योजन को घेरे सोलह सौ योगिनियाँ और जीरुआ-पचुआ भी नहीं थीं न चौदह सौ डाकिनियाँ ओर न ही पाँच बहिन भगवती ही ।

उसने आँखें उठा कर उत्तर की ओर देखा—जीरुआ और पचुआ आँधी की तरह वायुमार्ग से हिमालय की ओर उड़ी जा रही थी । उसके गेरुआ वसन आकाश में देवताओं के दो ध्वज की तरह लहराते ओझल हो रहे थे । भगवती के होठों पर जानी-पहचानी मुस्कान फैल गयी थी ।

५

तेरह बीघा के बीच बने दो बाँस से भी ऊँचा महल । महल के चारो ओर सागवान, शीशम और सेमल के बड़े-बड़े वृक्ष, जैसे महल की ऊँचाई को देखने उठे हों । एक ओर आम्रवृक्षों की कतार तो दूसरी ओर मौलश्री, कचनार, हरश्रृंगार के वृक्षों के बीच अर्द्धचंद्राकार में खड़े कनेल के वृक्ष भी ।

महल के दालान से उतर कर सलेस मौलश्री वृक्षों के बीच बने मंदिर के द्वार पर रुक गया । रात्रि का मध्य प्रहर बीत रहा था । सब कुछ निस्तब्ध । सब जगह—मौन-मौन ।

वह मंदिर की सीढ़ियों से नीचे गर्भगृह में उतरता गया । उसकी अभ्यस्त आँखें अंधेरे में भी प्रकाश देख रही थीं । गर्भगृह में दस कदम चल कर रुक गया; फिर सामनें बिछे कुश के आसन पर घुटने मोड़ कर बैठ गया ।

वह इस समय बेहद उद्विग्न था । स्थिर होना चाहता था । और इसके लिए वह जैसे ही अपनी आँखें बन्द करता कि एक अजीब-सी भयावह स्वप्नलोक से बंध जाता—

.....पर्वत-कन्दरा का देवगृह.....साधनारत सलेस....हठात ही उसकी पीठ पर किसी की उष्ण साँसों और मोरपंखी हथेलियों का सिहरता स्पर्श....देवता के लिए जल रहे तिल, जौ, चन्दन-चूर्ण और कर्पूर की धूप-गंध कस्तूरी-गंध में बदलती हुई....

दक्षिणावर्त आँखों से देखता है सलेस—देववासी की नीलोत्पल आँखें—बोझिल पलकों से मुंदी-मुंदी-सी....वह उसके स्पर्श को हटाना चाहता है कि उसकी हथेलियाँ कठोर होने लगती हैं.....बचने के लिए वह देवगृह के द्वार की ओर भागना चाहता है कि तभी वह देवदासी सहसा क्रोध से थरथराती हुई सर्परूप में बदल जाती है....पाँच-पाँच सरों की मादा सर्प.....सलेस को अपने गुंजल्क में लेने के लिए धड़ को उसकी ओर ही ससार रही है.....सलेस का शरीर श्वेद से सन जाता है, और रक्षा में देवगृह की छत से लटक रहे विशाल घंटे की जंजीर को शिथिल करता है.....और नीचे आते घंटे के बीच में छुप गया है.....उसे लगता है घंटा पिघल जाने तक गर्म होने लगा है.....सलेस को समझते देर नहीं लगती कि सर्परूप में देवदासी अपनी रगड़ से घंटा को गला देगी और वह इसीमें पिघल कर रह जायेगा ।

सलेस की आँखें अभी ठीक से मुंदी भी नहीं थीं कि पलकें खुल गयीं । वह अपने बंधे आँसू को रोक नहीं पाया । निबाध बह चले । कुछ देर तक अपने काँपते अधरों पर नियंत्रण रख पाया, लेकिन वह भी नहीं हो सका । बच्चे की तरह बिलख उठा और सामने ही ऊँचे पिण्डे की दीवाल से जड़ी जावाकुसुम की रक्तिम आभा लिए भुवनेश्वरी भैरवी से बोलने लगा, ''माँ, मेरे मस्तिष्क के उन कोषों को निष्क्रिय कर दो, जिनमें जन्म-जन्म की न जाने कैसी कैसी स्मृतियाँ संग्रहित हैं—जब स्मृतिकोष के स्नायु ही शिलीभूत हो जायेंगे, तब कैसे याद आयेगा देवगृह और देवदासी का दुराग्रह.....माँ, अगर यह तुमसे नहीं हो पाता,

तो मुझे ही चेतनाशून्य कर दो, पूर्वजन्म की स्मृतियों के साथ जीने से यही अच्छा होगा कि मेरा वर्तमान ही संज्ञाशून्य हो जाए.....''

और उत्तर की प्रतीक्षा में सलेस ने भुवनेश्वरी भैरवी की मूर्त्ति को देखा। मूर्त्ति अब भी वैसी ही अविचल थी । ललाट पर न चन्द्रकला फीकी हुई, न मस्तक की जटा ही ढीली हुई । अरुण वसन के बीच उन्नत वक्ष पर विभिन्न रत्नों के आभूषण भी वैसे ही स्थिर । न हाथों के पाश हिले थे, न अंकुश । लेकिन सलेस को लगा कि अभय मुद्रा में उठे देवी के हाथ और आगे बढ़ गये हैं । आँखें कुछ सजल हो गयी हैं । अधर चाह कर भी बोल नहीं पा रहे ।

सलेस ने अपने अधरों और आँखों पर नियंत्रण पाते हुए देवी को और भी गौर से देखा—लगा, वह जो कुछ भी देख रहा था, झूठ नहीं था । उसने मुड़े हुए घुटनों पर अपनी छाती रखी और फिर मस्तक को ठेहुनों पर रखते हुए, दोनों हाथों की तलहथियों को बढ़ाकर जमीन से सटा दिया । जाने वह कितनी देर ऐसी ही मुद्रा में पड़ा रहा, यह अनुभव करते हुए कि भुवनेश्वरी भैरवी के वर और अभय मुद्रा वाले हाथ उसके मस्तक पर आकर स्थिर हो गये हैं । और सलेस का सारा शरीर अलौकिक नाद के संगीत से झंकृत हो उठा ।

६

''मोतीराम, तुम, और इस समय ?''

''हाँ, राजमाता के आदेश से ।''

''मोती, तुमलोग राजमाता को समझाते क्यों नहीं कि उनकी सारी बातें मुझे स्वीकार हैं, लेकिन तुम्हारी भाभी के गौने की बात पर वह जिस तरह अड़ी हैं, वह पूरी होने से रही । सोचो, जिस विवाह के बारे में न मुझे मालूम है, न ही तुम्हारी भाभी को, तो वह विवाह कैसा ? जब गुड़ियों का ब्याह रचाया करता था, तभी घरवालों ने मेरी शादी मौजमपुर की राजकुमारी सामरी से कर दी । कैसी है सामरी, कैसा सुभाव, कैसा व्यवहार ? कुछ भी तो नहीं मुझे मालूम, और न ही उसे मेरे सुभाव, व्यवहार के बारे में.....बात यह भी नहीं है मोतीराम, बात तो यह है कि मैं विरागी गृहस्थ हो गया हूँ ।''

''यह विरागी गृहस्थ क्या है दादा ?''

''घर में रह रहा हूँ, तो गृहस्थ हूँ ही, लेकिन इस परिवार में मेरा भी कोई परिवार हो, आज तक नहीं सोच पाया । तब तुम मुझे विरागी नहीं कहोगे तो और

क्या ?'' सलेस ने अधरों पर एक फीकी-सी मुस्कान लाते हुए कहा ।

''लेकिन राजमाता की इच्छा से भी बढ़कर क्या किसी की कोई इच्छा होती है ? हो सकती है ?''

''तुम गलत नहीं कह रहे हो मोतीराम, और इस तरह से सोचो तो, मैं बहुत पतित हूँ, घोर पापी । लेकिन मैं सामरी को स्वीकार कर अपने पथ से जब विपथ हो जाऊँगा, तब उस दोष का भागीदार कौन होगा ? तुमलोग यह समझते क्यों नहीं कि मेरे जीवन का उद्देश्य वंश की वृद्धि नहीं है, उस मंगल-भाव में जीना है, जिससे मनुष्य और समाज रस ग्रहण कर पृथ्वी को स्वर्ग करता है ।'' पल भर के लिए रुकते हुए उसने पुनः कहा, ''इस भाव में जीना सहज नहीं है; देवता के लिए भी दुष्कर है, लेकिन मनुष्य अपने हित से विरक्त हो कर उस भाव की भव्यता पा सकता है । मैं उसी के प्रयास में हूँ । मुझे विचलित न करो, यही मेरे लिए, राजमाता के लिए, परिवार के लिए और पूरे समाज के लिए श्रेष्ठकर है ।''

''दादा, बन्धन तो तभी बन्धन बनता है, जब मनुष्य उसे उस रूप में स्वीकार करता है, नहीं तो बन्धन मुक्ति का मार्ग बन सकता है, बनता भी है ।''

''यह सदा सत्य नहीं होता । अगर तुम्हारी ही बात सही होती तो गृहस्थ के बाद वानप्रस्थ नहीं होता और वानप्रस्थ के बाद सन्यास नहीं ।.....हो सकता है, अभी प्रतिवाद करने के लिए तुम यह भी कहो कि वानप्रस्थ और सन्यास—जीवन के कर्मों से पलायन है; तो मेरे भाई, कर्म सिर्फ वही नहीं है, जो तुम समझते हो, या कि जो राजमाता समझती हैं, कर्म वह भी है, जो मनुष्य के दुखों के कारण और उससे इसकी मुक्ति के लिए एकान्त में और अकेले में चिन्ता होती है ।....परिवार तो बस बंधन ही है, वह मुक्ति क्या देगा । अगर देता भी है तो परिवार के व्यक्ति को । समाज की मुक्ति के लिए इसके पास मंत्र कहाँ होता ।.....हो सकता है, यह मेरा भ्रम भी हो, लकिन मेरे भाई, मेरा यह भ्रम अगर मुझे जीवन के उस सत्य तक पहुँचने में मदद करता है, तो इसे मुझसे छीनने पर तुमलोग क्यों लगे हुए हो ?''

''दादा, जब आप इतना सारा ज्ञान रखते हैं, तब मेरी एक शंका का समाधान भी आप जरूर ही करेंगे ।''

''कहो ।''

''ज्ञान जब इतना ही प्रबल होता है, तो मन से इतना भयभीत क्यों है?''

''मोती, तुम्हारे प्रश्न के पीछे अड़े प्रश्न का ही मैं उत्तर दूँगा । सुनो, यह हजार, दो हजार वर्षों की बात नहीं है । सौ-पचास वर्ष पहले की बात है । मंदार पर भगवान शिव ध्यानस्थ बैठे थे कि तभी वहाँ देवी पार्वती आयी और शिव से

कहा, 'आप सिद्धों को विवाह करने और वंश चलाने का आदेश क्यों नहीं देते ।' भगवान ने कहा—''सिद्धों में काम-विकार नहीं होता, इसी से ऐसा आदेश व्यर्थ होगा ।''.....पार्वती आश्चर्य में डूब-सी गयी । कहा, 'सिद्ध तो मनुष्य ही हैं, फिर मनुष्य में काम-विकार नहीं है, यह कैसे संभव है ! मैं इसकी परीक्षा लेना चाहूँगी, अगर आप की अनुमति मिले ।' जानते हो मोतीराम, भगवान शिव का आदेश पाकर पार्वती पर्वत से नीचे उतर आई । .....तब उस समय के महान चार सिद्ध चारों दिशाओं में तपस्यारत थे—पूरब में हाड़िपा, पश्चिम में गोरख, उत्तर में मीननाथ और दक्षिण में कानपा ।''

''कौन मीननाथ, जिन्होंने शिव का महाज्ञान सुना था ?''

''हाँ, वही मीननाथ । जब देवी पार्वती, मंदार से उतर पापहरणी सरोवर के किनारे खड़ी हुई, तब हाड़िपा, गोरख, कानपा और मीननाथ ने ध्यान में ही देखा कि उनके आदिदेव शिव ने स्मरण किया है, वे सब के सब वायुमार्ग से मंदार पर्वत की ओर चल पड़े । पर्वत के निकट आकर उन्होंने देखा कि पापहरणी के किनारे एक भुवनमोहिनी विहार कर रही है । तब वे सभी के सभी मंदार के शिखर पर उतरने की जगह, पापहरणी के किनारे ही उतर पड़े.....कोई कल्पना नहीं कर सकता, कि उस समय उन सिद्धों की क्या स्थिति हो रही थी.....मीननाथ मन ही मन सोच रहे थे कि यह भुवनमोहिनी प्राप्त हो जाय, तो जीवन आनन्दकेलि में ही व्यतीत करूँ, उधर कानपा सोच रहे थे कि ऐसी सुन्दरी की प्राप्ति के लिए वह प्राणों के उत्सर्ग के लिए भी तत्पर हैं; हाड़िपा तो उस परम सुन्दरी के लिए झाड़ूदार होने के लिए ही तत्पर हो गये.....हाँ गोरख नें उस विश्वमोहिनी को देख कर अवश्य यही इच्छा की—अगर मैं इसका पुत्र होता तो गोद में बैठ कर मैं दुग्धपान करता ।''

''लेकिन ऐसी इच्छाओं में अस्वाभिकता क्या है ? प्रकृति है ।''

''अस्वाभाविकता तो कुछ भी नहीं, लेकिन सिद्धों की ऐसी इच्छाओं के परिणाम से तुम परिचित नहीं हो मोतीराम । जानते हो, ऐसी इच्छाओं के कारण विश्वमोहिनी के रूप में देवी पार्वती नें उन्हें क्या दंड दिया ? मीननाथ ज्ञानशून्य होकर कदलीवन में सोलह सौ सुन्दरियों के साथ कामकेलि में लिप्त हो गये । कानपा तुरमान देश में चातक बन कर जीने लगे । कामार्त्त हाड़िपा को शाप के कारण अपनी सौतेली माँ से अपमानित होता पड़ा ।....मोतीराम, अग्नि चाहे जितनी भी बुझी-बुझी-सी लगे, घी की धार पड़ते ही प्रज्वलित हो उठती है । फिर आग की लपटों को नियंत्रित नहीं किया जा सकता । क्या तुम चाहोगे कि मैं कामार्त्त सिद्ध-सा अपने अभिशप्त जीवन को शेष होता देखूँ ।....जाओ, मेरी

सान्ध्य-साधना का समय हो रहा है ।''

७

''सुना तुमलोगों ने—सलेस के वचन को ?'' पाँचो बहन को अर्थभरी आँखों से निहारते भगवती से कहा ।

''हाँ सुना, ऐसे में सत को बचाना कितना कठिन होगा ।'' मालती ने कहा ।

''क्या बोलती हो, अगर सलेस गोरखनाथ की तरह सिद्ध बनना चाहता है, तो उसकी भी परीक्षा ली जायेगी, जैसे गोरख की ली गयी थी ।'' शीतला ने बातों में बातें जोड़ीं ।

''लेकिन मुझे तो लगता है—लाख परीक्षा लो, सलेस गोरख की तरह साफ निकल जायेगा । यह तो गोरख से भी ज्यादा कठोर लगता है ।'' मालती ने शंका दिखाई ।

''तुमलोग चुप भी रहोगी या नहीं । अलगी बनने की कोई जरूरत नहीं। धामिन बेटियों को तुम लोगों का संकेत पाकर जब मैंने वचन दिया है, तब सलेस को गंगा पार मैं करूँगी, और यह होकर रहेगा । तुम भोजपत्र की व्यवस्था करो, और जो कहूँ, उसे उस पर अंकित करती जाओ ।'' मालती को आदेश के स्वर में भगवती ने कहा था और स्वयं कुछ क्षणों के लिए मौन हो गयी थी । शून्य में खोई आँखों से ज्ञात हो रहा था, जैसे किसी संकट का समाधान ढूंढने में आकुल-व्याकुल हो । पलकें आप ही आप बंद हो गयी थीं ।

आँखें खुलीं तो मालती भोजपत्र लिए सामने उसे उत्सुकता से निहारती बैठी थी । आँखें मिलीं तो पुनः आँखें बन्द कर लिखने का संकेत किया और बोलने लगी, ''मेरे प्राणों के स्वामी, मुझे ज्ञात है कि आप मौजमपुर नहीं आ सकते । मैं आपको चाहे जितनी भी प्यारी लगूँ, लेकिन आपके प्राणों से बढ़ कर प्यारी तो नहीं ही हो सकती । इसी कारण, आप मेरे लिए अपने प्राण संकट में डालेंगे, ऐसा मुझे नहीं लगता । फिर ऐसा भी नहीं है कि मौजमपुर का राजा कनक सिंह आप से कम बलशाली है । आज तक किसी भी राज्य का राजा या राजकुमार उससे अपने प्राणों को नहीं बचा सका । नौ सौ से अधिक राजकुमारों को बन्दी कर रखा है और उनकी नवविवाहिताओं को अपनी पटरानियाँ बना रखा है । उसका पराक्रम और आतंक ही कुछ ऐसा है कि कोई भी अपनी नवविवाहिता

को लेकर मोजमपुर के मार्ग से नहीं गुजरता । यह लिखते हुए मुझे दुख हो रहा है कि आज से पन्द्रहवें दिन के बाद ही मेरा विवाह ताम्रद्वीप के राजकुमार से हो जायेगा । मेरे लिए वह महाप्रलय का क्षण होगा । लेकिन कुछ किया भी तो नहीं जा सकता । जब व्यक्ति के सामने प्राण और प्राणों की रक्षा का प्रश्न उठ खड़ा होता है, तो अपवाद ही प्रण की रक्षा के लिए प्राणों को भूल जाते हैं । कुछ भी हो, अच्छा होगा कि गौना लेने की बात छोड़ कर आप दूसरा ब्याह रचा लें । मुझ-सी सुन्दरियों की कमी तो नहीं है इस संसार में । तब मेरे लिए अति पराक्रमी कनक सिंह के हाथों आपका मरना या बन्दी होना कैसी बुद्धिमानी ? रही बात मेरी तो शेष जीवन को अभिशाप की तरह जी लूँगी ।''

भगवती नें आँखें खोलीं । मालती की ओर देखा, जो भोजपत्र पर आगे की बातें लिखने के लिए आँखें गड़ाये बैठी थी ।

''बस, अब आगे कुछ नहीं लिखना है ।''

''लेकिन इस पत्र का होगा क्या ?'' फुलसर ने हैरत से पूछा ।

''यह पत्र लेकर मैं स्वयं ठुट्ठी राज पकरिया जाऊँगी और मौका मिलते ही पत्र थमा दूँगी । फिर तुमलोग देखना कि स्थिति कैसे बदलती है ।'' उल्लसित होती भगवती ने कहा ।

''दीदी, कुछ मुझे भी तो बताओ कि स्थिति कैसे बदल जायेगी । क्या इस पत्र को पढ़ कर सलेस मौजमपुर जाने के लिए तैयार हो जायेगा ?''

''बिल्कुल नहीं । यह पत्र तो मोतीराम के हाथ में जायेगा । पत्र भी वही पढ़ेगा । पढ़ते ही वह आपे से बाहर हो जायेगा । मैं जानती हूँ, उसका खून नियंत्रित नहीं रह सकता । अपनी भाभी सामरी की रक्षा और कनक सिंह को सबक सिखाने के लिए वह तुरत मौजमपुर की ओर निकल पड़ेगा । कोई साथ नहीं भी दे, तब भी, अकेले ही ।'' भगवती ने दायीं हथेली से बायीं को दबाते हुए कहा । ''दो, मुझे पत्र दो ।'' और यह कह कर उसने पत्र अपने अधिकार में कर लिया ।

पाँचों भगवती आश्चर्यभरी आँखों से उसे निहार रही थीं ।

''सुनो, तुम सब यहीं पर मेरी प्रतीक्षा करना, जबतक मैं लौट नहीं आऊँ । मुझे लौटने में ज्यादा देर भी नहीं लगेगी । मेरा रन्थ तैयार करो ।''

भगवती का आदेश होना था कि देखते-ही-देखते उसके समक्ष दिव्य रथ आ लगा । सोल तिया अड़तालिस हाथों का विशाल रथ; जिसमें आठ तिया चौबीस चक्के लगे थे । रथ को खींचने के लिए सफेद रंग के तीन अश्व बार-बार अपनी गर्दनें ऊपर-नीचे कर रहे थे ।

रथ पर भगवती के सवार होते ही घोड़े गांडीव से छूटे तीर की तरह वायु को चीरने लगे । रथ के पीछे की दिशाएँ, धरती-आकाश, ऐसे छूटते जा रहे थे, जैसे वे थे ही नहीं । उस समय भगवती के मन की गति से भी अधिक तेज रथ भागा जा रहा था । बादलों की गड़गड़ाहट की तरह भागते रथ से नाद उत्पन्न होने लगा था ।

८

''मोती, चाहे जो भी उपाय करना पड़े, करना ही पड़ेगा । सलेस के चाहने या न चाहने से कुछ भी नहीं होता ।'' राजमाता का स्वर चिंता से टूट रहा था ।

''राजमाता, आप समझती क्यों नहीं । कल जब दादा ने मुझसे कहा कि किस तरह गोरख बाबा ने स्त्री के मोह से अपने को बचाए रखा, तभी मैंने यह समझ लिया कि अब दादा को कुछ भी नहीं समझाया जा सकता है । गोरख बाबा भी आ कर समझाए, तो वह नहीं मानेंगे ।'' मोतीराम के स्वर में खिन्नता घुली हुई थी ।

''सलेस ने गोरखनाथ की आधी कहानी ही तुम्हें सुनाई । तुम्हें नहीं मालूम कि गोरखनाथ ने जब पार्वती की मूर्त्ति-स्थापना की, तब देवी ने उसे स्त्री रत्न पाने का वरदान दिया । देवी का वचन खाली कैसे जा सकता था, शिव जी ने माया से एक रूपवती कन्या को उत्पन्न किया । उसी कन्या ने गोरखनाथ को पति रूप में स्वीकार किया । हठी तो कम नहीं थे गोरखबाबा, छः माह के शिशु का रूप धारण किया और कन्या के सामने दूध पीने के लिए मचलने लगे, अजीब स्थिति हो गयी । आखिर रूपवती की इच्छा रखने के लिए गोरख बाबा ने कहा, 'मुझमें काम-विकार तो होने से रहा, सुन्दरी तुम ऐसा करो कि मेरी करपटी धोकर उसका पानी पी जाओ, तुम्हें पुत्र की प्राप्ति होगी, और वही हुआ । स्त्री को कर्पटीनाथ जैसा दिव्य पुत्र प्राप्त हुआ.....तुम्हीं सोचो मोती, चाहे जैसे हो, गोरख बाबा को झुकना पड़ा और उनका भी वंश चला, तो उस विरागी सलेस का कैसे नहीं चलेगा । सारे उपायों को संचित कर कार्य को पूरा करना ही होगा मोती ।'' बातों को समाप्त करते-करते राजमाता की आँखों में आँसू छलछला आये थे ।

''राजमाता, तब आप मुझे आज्ञा दें, कि मैं ही मौजमपुर जाऊँ और भाभी को विधिवत ले आऊँ । दादा से पूछना तक नहीं है । आप नहीं जानतीं, एक दिन दादा, छेछन दा से कह रहे थे कि राजमाता की जो इच्छा है, उससे मैं

अनभिज्ञ नहीं । वंश चलने के मूल में राजमाता की एक और चिन्ता है; और वह यह है कि उत्तराधिकारी के रूप में अगर राजकुँवर का जन्म नहीं हुआ तो यह राजसिंहासन, एकत्रित किये गए इतने धन-सम्पत्त का आखिर क्या होगा । राजकुँवर हो जाए तो सारा राजपाट बच जायेगा । और राजपाट को बचाए रखने की इसी चिन्ता ने राजाओं को लोकहितेषी की जगह स्वार्थी और अमंगलकारी बनाया है । जहाँ राज्य की सत्ता और सम्पत्त में वंश के भाग्य की तलाश शुरु होती है और जहाँ सत्ता और सम्पत्ति लोकाभिमुख नहीं होती, वहाँ वह स्वयं अधोगति को प्राप्त कर पाप की तरह डोलती है । मेरे लिए ऐसा वंश और सिंहासन दोनों त्याज्य है ।' लेकिन आप चिन्ता न करें राजमाता, आपकी इच्छा है तो विपरीत को अनुकूल होना ही होगा । वैसे जानता हूँ, कि इसमें कितना बड़ा संकट आने वाला है, लेकिन संकट है तो संकट से मुक्ति के रास्ते भी हैं ।''

मौलश्री वृक्ष के नीचे खड़ी भगवती न जाने कब से माँ-बेटे की बातें सुन रही थी । अड़तालीस हाथों का रथ कोस भर पीछे ही पलाश के जंगल में छोड़ चुकी थी, और दुरखम खाती हुई पैदल ही ठुट्ठी राज पकरिया के तेरह बीघा में बने महल की फुलवारी में आकर खड़ी हो गयी थी, जहाँ मौलश्री के घने वृक्ष सब कुछ को ओझल बना रहे थे ।

बातें सुन-सुन कर भगवती के ठोरों पर खिले शिरीष की-सी हँसी फैल रही थी । और जैसे ही उसे लगा कि मोतीराम की माँ दालान के भीतर जा चुकी है, भगवती बुढ़िया की शक्ल में तत्क्षण बदल गयी । वसन्त के खिले रूप पर पतझड़ का उदास संगीत हाहाकार करने लगा । भगवती के ढीले-ढाले हाथ-पाँव एक लाठी के बल पर बढ़ने लगे और महल के द्वार पर आकर रुक गये ।

उस पर मोतीराम की आँखें पड़ीं, जो अभी भी चन्दन की ऊँची चौकी पर बैठा हुआ था ।

बुढ़िया ने दूर से ही अभिवादन में सर को झुकाया और मोतीराम के निकट आने पर पत्र को उसके हाथ में थमाती हुई बोली, ''मैं मौजमपुर से राजकुमारी सामरी का पत्र लेकर आई हूँ । कनक सिंह के आतंक को स्मरण कर मैं आना तो नहीं चाह रही थी, लेकिन राजकुमारी के आदेश का उल्लंघन न कर सकी । मुझे अभी तुरत ही लौट जाना होगा । कई दिनों का रास्ता तय करना है । राजकुमारी ने मुझे तीसरे दिन ही महल में उपस्थित होने का आदेश भी दिया है; इसी से मैं एक क्षण भी यहाँ नहीं रुक सकती ।'' इतना कहती हुई भगवती दुरखम खाती मौलश्री वृक्षों तक आई और फिर अपने रथ की ओर बढ़ गयी । वह जान रही थी कि पत्र पढ़ने के बाद मोतीराम उसकी तलाश अवश्य ही करेगा ।

वह तो ठीक ऐसे समय पर पहुँची थी कि जब आदमी अतिथि के मान-सम्मान का सोच-विचार भी भूल जाता है ।

भगवती ने घूम कर दो बाँस ऊँचे दालान को देखा और रथ पर सवार हो गयी । उसके चेहरे पर शरत की ठहाका इंजोरिया केन्द्रीभूत हो रही थी । लौट चलने के लिए उसने हवा में अपने दायें हाथ को उठाया भर था कि रथ अपने केन्द्र पर घड़ी की सूई की तरह पलक मारते घूम गया और भादो के गरजते बादल का नाद अपनी गति से उठाता हुआ, बिजली की तरह छिटक कर दिशाओं में खो गया । देर तक दिशाएँ धम्म से गिरे काँसे की बर्त्तन की तरह कम्पित होती रहीं । मोतीराम के साथ सारा महल यह सोचता ही रह गया, आखिर यह कैसा नाद था ?

६

मोतीराम ने माँ से सारी बात बताई तो राजमाता एकदम से व्याकुल हो उठी, ''तब हमलोगों को क्या करना चाहिए ?''

''मैंने तो सोच लिया है राजमाता, कि कल ही खैरना नाई को गौना का कट लेकर मौजमपुर भेज दूँगा । सारी तैयारियाँ आज ही पूरी होंगी, कल से परसों नहीं होगा ।'' मोतीराम ने दृढ़ स्वर में कहा ।

''क्या तुमने यह पत्र सलेस को दिया था ?''

''पत्र ही नहीं दिया था, इसकी जानकारी भी दी कि गौने का कट लेकर खैरना को मौजुमपुर भेजा जा रहा है ।''

''तब ?''

''तब क्या । उन्होने कुछ भी नहीं कहा, जैसे मेरी बातें ही उन्होंने नहीं सुनी हो । आप दादा की बातों को लेकर चिन्तित मत हों । काम तो सहज ही हो जाता, उस दूती से ही, जिसने यह पत्र लाकर दिया ।.....उस समय मैं इतना उद्विग्न था कि इसका भी ख्याल नहीं रख सका—वह भाभी का पत्र लेकर मौजमपुर से आई है,.....कुछ घड़ी के बाद ही तो मैंने उसकी खोज भी की, कोसों जंगल तक चला गया, लेकिन न जाने कहाँ, किस रास्ते से निकल गयी थी । आश्चर्य है राजमाता, इतनी जल्दी तो कोई योगिन या देवी भी गायब नहीं हो सकती ।''

''अब उसकी चिन्ता मत करो । तुम जल्दी से मैनमा सिपाही को भेजो

कि खैरना को ले आए । मैं इधर सबका इन्तजाम करती हूँ । और स्वयं जाकर सलेस को इसकी जानकारी भी देती हूँ । कहाँ होगा वह इस समय ?''

''आप भूल रही हैं, आज योगिनी का दिन है और दादा राज्य की दीन औरतों के बीच लाल लुटा रहे होंगे ।''

''हाँ, आज योगिनी का दिन है ।'' कहती हुई वह दालान के किनारे आ गयी, पीछे-पीछे मोतीराम भी ।

दोनों ने देखा, राजपथ पर दूर तक दीन स्त्रियों की पंक्ति खड़ी थी । सलेस अपने स्वर्णपात्र में लाल लिए एक-एक स्त्री के पास पहुँचता, उसके फैले खोचे में एक लाल रखता और उसके चरण छूकर आगे बढ़ जाता ।

सलेस के चेहरे पर असीम सुख का भाव था, रक्तवर्ण की मिरजई में उसकी दिव्यता और भी बढ़ गयी थी ।

''राजमाता, देख रही हैं न दादा की दानलीला ।'' मोतीराम ने राजमाता की ओर देख कर कहा ।

''देख रही हूँ ।'' उत्तर आया ।

''और जिस तरह दान में दादा उत्साह दिखा रहे हैं, उससे इतना तो तय है कि कभी इस घर में अगर कोई कर्पटीनाथ का जन्म हुआ भी तो गोरख वह बाबा की तरह दूध की तरह मचलते रह जायेगा, और दूध नसीब नहीं होगा ।'' मोतीराम का स्वर कुछ कसैला-सा निकला था ।

उसके असहज स्वर को अनुभव कर राजमाता ने कहा, ''बेटे, इस घर में प्रत्येक दिन चौदह लाल आते हैं, यह सलेस के पुण्य-फल से । और ऐसा धन, पुण्य के कार्य में लगे—इससे कुछ श्रेष्ठ नहीं हो सकता । तुम्हें याद नहीं, सलेस ने क्या कहा था, कहा था, 'जो धन प्रजा से प्राप्त होता है, वह प्रजा-हित में ही जाए तो, यह धन की सद्गति है और राजा की शांति का सुमार्ग भी ।' बेटे मोती, सलेस वही तो कर रहा है ।'' प्रसन्न भाव से राजमाता ने कहा था ।

''आप मेरे कहने का कुछ और अर्थ मत लें ।'' अपने भाव को छुपाते मोतीराम ने कहा, ''मैं तो बस यही कह रहा था कि कल भाभी की भी गोद भरेगी, उसके सुख-दुख का ख्याल रखते हुए ही यह दान-पुण्य हो तो श्रेष्ठ ।''

''धन को कौन बचा कर रख पाया है बेटा । किस सम्राट का साम्राज्य रह गया है और किस सम्राट का अक्षय कुबेर-भंडार ! मन की तरह राजलक्ष्मी भी अति चंचल है । मेरा तो मन कर रहा है कि मैं भी पंक्ति में खड़ी हो जाऊँ और दान में सलेस से अपना पोता मांग लूँ । अगर कुछ नहीं हो सका तो एक दिन यही करूँगी ।''

''इसकी जरूरत ही नहीं पड़ेगी कि कुछ प्राप्ति के लिए आपका पंक्ति में आना पड़े, जब तक आपका पुत्र मोती जीवित है ।''

मोतीराम ने गर्व से राजमाता को कहा और उसी गर्व भाव से भरी हुई माँ ने भी मोतीराम को निहारा था—यह सोच कर कि उसने मोती जैसा बहादुर बेटा पाया है, उसने बेटे के सर पर आशीर्वाद का हाथ रखा तो मोती भी उनके चरणों पर झुक गया । उठा, तो उसकी आँखें पनिया आई थीं, राजमाता की आँखों से तो लोर ही बह चले थे ।

१०

बाबू सलेस का मैनमा सिपाही, चट्टान को काट कर बनाई गयी विशाल मूर्त्ति की तरह था । दो मन के वजन का मैनमा जब रास्ते पर चलता, तो उसे देखने के लिए किसकी नजरें उस ओर नहीं घूम जातीं ? कमर से ऐड़ियों तक दूध-सी दमकती धोती और कंधे को ढकती एक चादर, जिसके दोनों छोर गर्दन से होते हुए छाती पर लटके होते । हाथ में पाँच हाथों का डांग, जो काले पत्थर से बना लगता था ।

दूर से ही खैरना ने उसे देखा, तो उसे जड़ैया बुखार लग गया । अपनी जगह पर थरथराने लगा । बड़ी मुश्किल से अपने को संभाला और सीधे घर के भीतर भागा ।

आँगन में झाड़ू दे रही खैरना की माँ टनकी लोनिया ने उसे इस हालत में देखा तो, भयभीत होते हुए पूछा, ''क्या बात है, तुम्हें इस तरह थरथरी क्यों लगी है ?''

''माँ, राजा का सिपाही आ रहा है । इधर ही । मेरे ही घर ।'' उसकी आवाज मे अजीब थरथराहट थी ।

''लेकिन क्यों ?'' टनकी की आँखों में भी आशंका समा गयी ।

''माँ, जरूर मुझे गौने का कट लेकर मौजमपुर भेजने की बात होगी । इसके सिवा दूसरी कोई बात नहीं हो सकती । और मौजमपुर जाने का मतलब है, मेरा औरदा पूरा हो गया । मेरी लाश भी घूम कर नहीं आयेगी । कौन जिंदा बचा है मौजमपुर जा कर ।'' कहते-कहते खैरना कनमुँहा-सा हो गया ।

''अरे बेटा, ऐसा मत बोल, तुम तो मेरी अकेली सन्तान है, तुम्हें कुछ नहीं होगा ।'' अचानक ही अपनी पनिया आई आँखों को आँचल से पोछती टनकी

ने कहा ।

''माँ, यह समय झूठा ढाढस बंधाने का नहीं है । सुनो, मैं कमरे में घुस कर सो जाता हूँ । तीन-चार रजाई बदन पर डाला और सिपाही मुझे खोजने आए तो कहना—वह तो कल से ही जड़ैया बुखार से काँप रहा है ।'' और यह कह कर, माँ के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना, खैरना कमरे में घुसा । तीन और चार रजाई तान खाट पर सो गया ।

टनकी लौनिया बेचैन आँगन में झाड़ू देने लगी । झाड़ू क्या दे रही थी, भय से इधर-उधर आंगन झाड़ू से छू भर रही थी ।

''खैरना है रे''

मैनमा सिपाही की कड़ी आवज द्वार पर कड़की तो रजाई में खैरना और टनकी आँगन में थरथराने लगी ।

''खैरना, आवाज नहीं देता है रे ।''

आवाज फिर गड़गड़ाई तो टनकी माँ ने झट काँपते हाथों से दरवाजे का हुड़का खोल दिया । झुक कर नमस्कार किया और पूछा, ''क्या है सिपाही जी, महल का हाल-समाचार सब ठीक तो है ?''

''सब ठीक है, खैरना कहाँ है ? उसे गौने का कट लेकर मौजमपुर जाना है, और परसों ही । वह आज ही जाकर महल में छोटे मालिक से मिल ले ।''

''लेकिन सिपाही जी, वह तो कल से ही बुखार से मरा जा रहा है । देह की कँपकँपी जा ही नहीं रही ।''

''अरे, यह तो अच्छी खबर नहीं है, तुमने वैद से नहीं दिखाया ?'' मैनमा ने बुढ़िया की आँखों में कुछ पढ़ते हुए कहा ।

''पैसे ही कहाँ हैं मालिक !''

''नहीं हैं तो मैं देता हूँ । तुमने जिस बीमारी का नाम लिया, उससे तो लगता है वह और घंटे दो घंटे का मेहमान है,'' कहते-कहते मैनमा द्वार पर आने लगा तो टनकी द्वार के एक ओर हो गयी । आंगन आकर उसने कहा, ''ये लो, एक टाका है, इससे तुम दौड़कर चार आने का कड़ुआ तेल, सूखी मिरचाई अढ़ाई सेर, एक बड़ी-सी नई कड़ाही, एक नया समाट और आम की सूखी लकड़ी ले आओ ।''

''लेकिन इन सब चीजों का क्या होगा सिपाही जी ?'' टनकी लौनिया की आँखों में एक नये किस्म का भय उग आया था ।

''तुम भी टनकी अजीब हो, बेटा घंटे-दो-घंटे का मेहमान है और पूछती हो—मैं इन चीजों का क्या करूँगा । चूल्हा जला कर दवाई बनानी है । बस एक

चोट लगाऊँगा कि देखना खैरना कैसे ठीक होने लगता है ।''

खैरना गुदड़ी से सर को बाहर किए मैनमा की बातों को सुन रहा था । उसने गेंदरा-गुदड़ी हटाई और उठ कर खाट पर बैठ गया, सोचा—मौजमपुर तो वह परसों जाकर मरेगा, लेकिन यह सिपाही जिस दवाई से उसकी इलाज करने जा रहा है, उससे तो वह आज ही, सचमुच में घंटे, दो घंटे के बाद मर ही जायेगा ।

बदन में मिरचाई की लहर चढ़ने के स्मरण से ही उसका पूरा बदन सिहर उठा ।

''अरे, तुम खड़ी-खड़ी मुझे क्या देख रही हो ! जल्दी जाओ !'' तब तक मैं खैरना की नब्ज-उब्ज देखता हूँ ।'' और यह कहते मैनमा खैरना की कोठरी की ओर बढ़ गया । पता नहीं, क्या सोच कर टनकी लौनिया द्वार से बाहर निकल एक ओर चली गयी ।

''अरे, तुम्हारी माँ ने तो बताया कि तुम तीन गेंदरा के नीचे बुखार से कुहर रहे हो, और मैं देखता हूँ, तुम बैठे हो ।'' सहज भाव से मैनमा ने कहा ।

''गौने का कट लेकर मौजमपुर जाने की बात मैंने सुनी, तो बुखार ही जैसे उतर गया । भाग्य से ही तो राजा का काम करने को मिलता है ।''

''मैं भी यही सोच रहा था कि तुम ऐसा ही करोगे । दवा ही ऐसी कड़ी है कि लगाने की जरूरत नहीं पड़ती, नाम सुनकर बीमारी भाग जाती है । अब माँ से तुम कहना कि लाया हुआ सामान घर के काम में ही खर्च कर लेगी । मैं चलता हूँ, गौने का कट लेकर तुम्हें एकदम भोरे-भोर निकलना है । डाला-चंगेरा सब सज दिये गये हैं । भोरकवा उगने से पहले ही मुहुर्त्त है । तुम आज साँझ को हवेली पहुँच जाना । समझे ।'' कहते-कहते मैनमा पाँच-छः डेग में ही आँगन को पार करते दरवाजे से बाहर हो गया ।

११

''मोती, आश्चर्य है, तुमलोगों ने गौना का कट लेकर नाई को मौजमपुर भी भेज दिया । इसका भी इन्तजार नहीं किया कि तीन दिनों के बाद ही मैं लौटने वाला हूँ । सामरी के साथ मुझे जीवन जीना है, इसलिए हित-अनहित की बात मुझसे अधिक बेहतर कौन समझ सकता है । एक तो ऐसा करने में मुझे यह मार्ग ही लहू से लथपथ दिखता है, फिर इसमें नारी का सम्मान भी कहाँ झलकता ? आखिर एक नारी है, उसे बल से मैं ग्रहण करूँ या फिर कनक सिंह—यह तो स्त्री

का घोर अपमान है । यह तो इसी बात को पुनरस्थापित करना है कि स्त्री और जमीन ताकत की चीज है । एक आदिम सोच, जितना भयावह, उतना ही क्रूर.....बात यहीं तक नहीं है । कुछ दिनों पूर्व तुमने जो पत्र मुझे दिया था, उसका कुछ भी अर्थ मैं नहीं समझ पाया । वह एक राजपुत्री है और जब राजपुत्री की ही ऐसी कायर भाषा होगी, तो उससे समाज के हित की क्या आशा की जा सकती है । आज तक मैंने उसके गौने की बात नहीं सोची तो कारण स्पष्ट है, तुम्हें बता भी चुका हूँ । लेकिन दूसरा कारण नहीं बता सका ।.....अब बता कर भी क्या होगा ? वैसे जो एक बात और थी, उसे तो जान ही लो मोती, मैं चाहता था कि पहले किसी तरह उन सौ से अधिक स्त्रियों को कनक सिंह के राजमहल से मुक्त कराऊँ, जिन्हें उसने उनके सुहागों से छीन कर अपने महल में बन्दी-सा जीवन जीने के लिए लाचार कर दिया है । मेरे राज्य से बाहर ही सही, लेकिन सोचो मोती, जहाँ इतनी-इतनी स्त्रियाँ अपने सुहाग से वियुक्त होकर किसी अत्याचारी का पाप सहने के लिए लाचार हो, मैं अपनी प्रिया के साथ सपनों का संसार सजाऊँ—धिक्कार है मेरे जीवन को ! मैं बरसों से जिस साधना में रत हूँ, वह सब किसलिए ? आज तक नहीं कहा, लेकिन आज कह रहा हूँ, सुनो—मैं भगवती से वह दिव्य अस्त्र प्राप्त करना चाहता हूँ, जिसके प्रयोग से पापियों का हनन नहीं होता है, पाप का शमन होता है । यह अस्त्र अगर लौह या पत्थर का बना होता, तो देवी से हठपूर्वक मांग लेता, यह तो आत्मा की दिव्य शक्ति है, जो मुझे अपनी ही कठोर साधना से प्राप्त करनी है, साधना अधूरी है, इसी से देवी अनुकूल नहीं हुई है । जिस दिन मुझे यह अस्त्र मिलेगा, देखना मोती, उस दिन एक कनक सिंह तो क्या, सौ कनक सिंह तुम्हारी तरह मेरे भाई होंगे । अब वह दिन दूर भी नहीं है । साधना का अन्तिम सोपान बच गया है.....चैत का प्रवेश होने ही वाला है। यह फागुन का मध्यकाल बीत रहा है । अजीब हाल हो गया है मेरा.....जानोगे मोती, आम्र-मंजरियों के बीच कोयल का यह पंचम राग—कैसा लगता है ? जैसे भगवती मुझे बार बार हाँक दे रही है.....एक बार की बात नहीं है, हर बार ही ऐसा लगता है.....और वह भी नींद में नहीं, जागृति काल में.....तब कहो मोती, यह झूठ कैसे हो सकता ? संभव है, यह मेरे मन की ही हाँक हो, लेकिन है तो । जब मन झूठ नहीं, तो हाँक कैसे हो सकती है ? अगर यह है, तो मुझे जाना ही होगा, मुझे दुख है कि मैं अपनी प्रिया के स्वागत के लिए अपने महल में नहीं हूँगा । लेकिन क्या होता है, तुम तो हो, राजमाता तो हैं.....देवर और माँ का प्यार पाकर उसे मेरी अनुपस्थिति खलेगी भी नहीं ।.....मोती, मैं जिस शक्ति को पाना चाहता हूँ, तुम नहीं समझोगे कि उसकी जरूरत आज कितनी है । यह ठीक है कि मेरे राज्य में शांति है, लेकिन पड़ोसी राज्य में अगर अशांति है, अनाचार है, तो मैं

अपने राज्य को भी सुरक्षित नहीं समझता हूँ.....भले ही, हम किले में सुरक्षित क्यों न हों, बगल की बस्ती में लगी आग हमें सुख की नींद कभी सोने नहीं दे सकती—वह भी नहीं, जो सिर्फ अपने लिए जीता है और वह तो कभी नहीं, जो दूसरों की कुचिंता में रात को भी नहीं सोता । मोती, भूलना नहीं कि हमलोग व्रात्य हैं, एक ऐसे पंथ के मार्गी, जो कि संसार के सुख और शांति की कामना में उठा है—घृणा और हिंसा इसका मार्ग नहीं और अभी संसार में घृणा का ही, हिंसा का ही शासन है । मैं इसी शासन के समूल उच्छेद के लिए बेचैन हूँ मोती । जो घृणा या हिंसा के प्रदर्शन से संभव नहीं । जो प्रजा का भाग्य छीन कर अपने हितों का स्वर्ग सजाता है, नीति का वचन कहते हुए अनीति के बल से बलशाली होता है, वह मनुष्य की देह पर जितना भी शासन करले, मन पर शासन कभी नहीं कर सकता । उसके राज्य में अशांति रेगिस्तान में कंटीले झंखाड़ की तरह छायी रहती है । मोती, इसे हमेशा याद रखना कि समाज से शासक अलग नहीं । अराजकता उत्पन्न करने का अधिकारी कोई नहीं । जो ऐसा समझता है, आखिरकार वह दंड के आगे अपनी गर्दन झुकाए हुए अपने को बंधा खड़ा पाता है ।.....लेकिन अपराध के लिए दंड तो आखिर अपराध ही है....मैं नहीं समझता कि अपराध से अपराध समाप्त हो सकेगा । आग को आग से नहीं बुझाया जा सकता; उसे जल से ही शमित किया जाता है ।.....मैं उसी अमृतजल की तलाश में बेचैन हूँ मोती, जो मौजमपुर के विपथगामी कनक सिंह को ही नहीं, जमपुर के कनकसिंह को भी पथगामी बना सके । और यह काम अकेले नहीं हो सकता, इसमें सबका सहभाग होना होगा; सबको अपने-अपने हितों का अंश-त्याग करना होगा । यह अपेक्षा सिर्फ सत्ता से करना व्यर्थ है, घर के लोगों का त्याग ही समाज को सतपथ दिखाता है । समस्या अभी वंश-वृद्धि की नहीं है, समस्या है—समाज की उत्तेजित, अनियंत्रित गति को लय-संगीत से बांधने की । मोती, मैं निश्चिन्त हूँ कि राजमाता का मोह मुझे अगर घेरना भी चाहेगा तो तुम-सा भाई मुझे पथ से विचलित नहीं होने देगा । तुम हो तो राजमाता भी सब कुछ समझ जायेगी और तुम्हारी बुद्धिमति भाभी सामरी भी.....मुझे तो जाना ही होगा, आज ही, अभी । मैं जिस असह्य वेदना से उद्वेलित हो रहा हूँ, उससे मुक्ति का मार्ग महादेवी के हाथों में ही है । मैं आज ही तेलडीहा की ओर प्रस्थान करूँगा ।....पैदल ही पहुँचना है देवी के द्वार पर । कुछ दिन तो लग ही जायेंगे. .....भूलना नहीं कि किसी राज्य की राजकुमारी तुम्हारे घर में पहली बार कदम रखेगी.....द्वार से लेकर दीवार तक आनन्द में डूबा लगे ।''

इतना कह सलेस अपनी जगह से उठ खड़ा हुआ ।

मोतीराम से कुछ भी न कहा गया । जैसे दोनों अधर एक दूसरे पर जम गये थे और उसकी आँखों में विरागी का भाव उतर आया था—न खुशी, न दुख । बस यंत्रचलित पुतले-सा उठा और सलेस के चरणों पर झुक गया ।

सलेस ने आशीष की मुद्रा में अपने हाथों को उठाया और बिना कुछ कहे महल के मुख्य द्वार से बाहर हो गया । मोतीराम ने देखा, एक अजीब-सा सन्नाटा उसके चारो ओर छूट गया है, वह जो फागुन का वैभव अभी-अभी उसके चारो ओर फैला हुआ था, वह तो सलेस के साथ ही पीछे-पीछे चला गया था ।

तो क्या दादा यह जान गये थे, कि खैरना आज ही लौट आयेगा, और इसीलिए इसके यहाँ आने के पहले ही निकल गये.....मोतीराम के मन में एक क्षण के लिए जैसे कोई चीज चमक कर अलोपित हो गयी । लेकिन उसने उस ओर ध्यान भी नहीं दिया ।

१२

खैरना मौजमपुर से लौट आया था । सम्पूर्ण पकरिया राज्य में खुशी की बारात सज गयी । जैसे सलेस के पीछे-पीछे गया वसन्त खैरना के लौटने के साथ ही लौट आया था । जैसे समूचा राज्य ही इस संदेश की प्रतीक्षा में था कि मौजमपुर के श्रेष्ठी रूपचन्द हजारी बाबू ने कट स्वीकार लिया है ।

''खैरना, मौजमपुर कैसा देश है ?''

''तुम्हें राजा कनक सिंह के सिपाही ने रोका नहीं ?''

''तुम्हें रास्तें में जाते हुए डर नहीं लगा ?''

और पूछने वालों को खैरना जैसे रटी-रटाई पंक्ति में उत्तर देता, ''अरे डरने की क्या बात थी । मैं अकेले था क्या—पालकी पर चढ़ के जा रहा था, और कहार भी बाँस की बत्ती की तरह दुबले-पतले थे क्या—जैसे दो पहलवानों का एक पहलवान समझो । ऐसा नहीं होता, तो पालकी को ढोना सहज था क्या ! कौन-सी मिठाई का डाला नहीं था, उस पर । रेशमी साड़ी, साया, अंगिया, सिन्दूर, ऐलता, टिकुली, ऐना वाला डाला तो सबसे अलग—जैसे बड़ा और सबसे भारी । मैं तो रास्ते भर सोचता ही रहा कि बाप रे बाप, गौने के कट में इतना-इतना सामान.. ....डरने या दूसरी बात सोचने का समय ही कहाँ मिला मुझको ।'' खैरना की बातें सुन कर पूछने वाले हँस पड़ते ।

और चुपके से खैरना वहाँ से खिसक जाता । वह जल्दी से जल्दी घर

पहुँचना चाहता था । वह यह भी जानता था कि रास्ते में ही मैनमा सिपाही का घर है । वह भी उसी की प्रतीक्षा में होगा । घंटे भर से कम नहीं लगेगा, उसके सारे प्रश्नों के उत्तर देने में ।

सचमुच में मैनमा उसी की प्रतीक्षा में द्वार के बरामदे पर बैठा हुआ था । देखते ही, दूर से ही खैरना ने झुक कर नमस्कार किया और उसके करीब आ खड़ा हुआ । संकेत पाया तो बिछी चटाई पर दोनों ठेहुनों को हाथों से बांध ाकर बैठ गया ।

''तो सुनाओ, कैसे मौजमपुर पहुँचे ? क्या देखा वहाँ, बाबू रूपचन्द की हवेली के बारे में बताओ ? क्या अपने मालिक की हवेली से भी बड़ी है ?''

मैनमा के एक साथ कई प्रश्नों को सुनकर खैरना समझ गया कि सारे प्रश्नों के उत्तर देने में तो आधा दिन लग जायेगा, ऐसे प्रश्न तो मैनमा सिपाही के पास अभी सौ से अधिक और होंगे । इसीसे खैरना ने एक अलग ही रास्ता निकाला । उसे मालूम है कि कौन-सी बात मैनमा को सबसे अधिक प्यारी है, और एक बार उसे सुनने के बाद वह किसी भी बात को सुनना एकदम पसन्द नहीं करता ।

खैरना ने अपने बंधे ठेहुनों को खोला और दायीं टाँग को बायीं जाँघ पर रखते हुए कहना शुरु किया, ''सिपाही जी, मौजमपुर पहुँचने पर मैंनें देखा कि नगर के किनारे एक विशाल इनारा है; उसी इनारे पर बीस-पच्चीस पनिहारिनें आपस में बातचीत कर रही हैं । मेरे संकेत पर पालकी इनारे के करीब नीचे रखी गयी । क्या कहें सिपाही जी, अपूर्व थीं वे पनिहारिनें । हँसतीं, तो मौलश्री के फूल झरते थे, तिरछी आँखों से देखतीं, तो जादू के वाण चल जाते और बोलतीं, तो रेगिस्तान में गंगा बहने लगती ।.....मेरी तो चेतना ही मूर्छित हुई जा रही थी... .बड़ी मुश्किल से पूछ पाया कि बाबू रूपचन्द हजारी जी का महल कौन-सा है, क्योंकि वहाँ तो सब के घर महल की तरह ही लगते थे ।...जानते हैं, उनमें से तीन ने एक साथ ही क्या कहा ।'' और खैरना ने अपना बायाँ हाथ एक ओर उठा कर बताने के अभिनय मे कहा, ''जानते हैं, उन तीनों ने कहा, 'उधर देखिए, वह जो सबसे बड़ा महल दिखता है और जिस पर महावीर जी की चित्रवाला ध्वजा उड़ रही है, वही है बाबू रूपचन्द हजारी जी का महल....क्या तुम पकरिया राज्य का ठाकुर हो ? सखी सामरी के गौने का कट लेकर आये हो ?.....चलो, तब तो सामरी के साथ-साथ हमलोगों के भी भाग जागे.....' और यह कहकर सब खिलखिला कर हँस पड़ीं—अब क्या कहें सिपाही जी, उन पनिहारिनों का हँसना क्या था, लगा, जैसे मैं संगीत के लोक में बैठा हुआ हूँ और एक साथ ही, मृदंग,

मानर, बौंसुली, वीणा, बज उठे हों ।..... मैं नाचने नहीं लगा, बस यही समझिए। अगर आप मेरी जगह होते तो आपकी भी यही हालत होती । क्या नहीं होती ?'' उत्तर के लिए खैरना ने मैनमा सिपाही की ओर देखा, जो अबतक किसी और ही दुनिया में खो चुका था । आस-पास के दीन-दुनिया से एकदम बेखबर ।

खैरना का निशाना अचूक लगा था । वह आहिस्ता से उठा और अपने घर की ओर बढ़ गया, जहाँ उसकी माँ पाँच रोजों से उसकी प्रतीक्षा में ठीक से एक रात भी नहीं सो पाई थी । बेटे को देखा तो माँ के वात्सल्य का वेग आँखों से फूट पड़ा ।

''अरे माँ, रोती क्यों है ! देख तो, तुम्हारा बेटा एकदम सही सलामत लौटा है । और साथ में दो लाल भी लेकर । मौजमपुर के मालिक बाबू रूपचन्द हजारी नें खुशी में दिए हैं ।'' खैरना ने कमर की धोती में बंधे दोनों लाल को सावधानी से निकाला और उन्हें तलहथी में रख कर फिर माँ की ओर बढ़ाया था ।

''चल, मुझे इससे क्या लेना । मेरे लिए तो तुम ही सौ लाल के बराबर हो ।'' और टनकी ने अपनी आँखों के आँसू को साड़ी के छोर से पोछ लिया ।

रात के समय खैरना जब खाने पर बैठा तो बगल में बैठी टनकी ने पूछा, ''मौजमपुर गये, तो किसी तरह बहू को देखने का मौका मिला या बहू की माँ से ही बातचीत करने का कोई अवसर मिला ?''

''क्या कहती हो माँ, अरे हवेली में किससे बातें करने का अवसर नहीं मिला, यह पूछो । नगर के एक कोने में एक विशाल इनारा देखा, जहाँ बीस-पच्चीस पनिहारिनें पानी भर रहीं थीं, उन्हीं में से दो-तीन ने मुझे बताया था कि बाबू रूपचन्द जी की कौन-सी हवेली है ।'' उसने मुँह के कौर को गले के अन्दर करते कहा, ''लेकिन क्या बताऊँ माँ, बाबू रूपचन्द से इधर-उधर की बातचीत होने के बाद जब मुख्य बात पर आया तो उन्होंने कट लेने से साफ इनकार कर दिया ।''

''क्यों ?'' टनकी लौनिया के हाथों से जैसे तोता ही उड़ गया हो ।

''कहने लगे, 'मैं बेटी को विपत्ति में नहीं डाल सकता । क्या समधिन को मालूम नहीं कि कनक सिंह से बचकर आज तक कोई नहीं निकल सका ! व्यर्थ में अपने बेटे के प्राणों से वंचित तो होंगी ही और मेरी बेटी भी कनक सिंह की हवेली की शोभा बन जायेगी । मैं ऐसा कभी नहीं चाहूँगा....कट किसी भी शर्त पर स्वीकार नहीं कर सकता । हाँ मेरी तरफ से समधिन जी को जरूर निवेदन करो कि वह अपने बेटे की दूसरी शादी कर दें, इसीमें दोनों ही परिवारों का कल्याण

है ।''

''तब फिर ?''

जैसे खैरना ने माँ के प्रश्न को नहीं सुना हो, उसने पूर्व की बातों को ही आगे बढ़ाते हुए अपनी ही धुन में कहा, ''मैं तो उनकी बातें सुनते ही तिलमिला गया, कहा—धरती पर ऐसा कौन माई का लाल जन्मा है, जो मेरे मालिक की देह पर खरोंच भी लगा सके, प्राणों को लेने की बात तो दूर रहे । उनका आदेश मिल जाए, तो दूसरे ही क्षण, मौजमपुर में कनक सिंह की हवेली का पता मिलना मुश्किल हो जाए और यही कनक सिंह पकरिया राज के बन्दीगृह में जंजीरबद्ध मिलेगा ।'' कहते-कहते सचमुच में खैरना की आँखों में एक बार फिर गुस्सा उतर आया था ।

''तो क्या, उन्होंने कट ले लिया ?'' बेचैनी में टनकी ने पूछा ।

लेकिन खैरना की आँखों में टनकी की विकलता नहीं, मौजमपुर की बातें घूम रही थीं । वह आँखें नीचे कर थाली के अन्न पर वृत्त बनाने लगा था ।

टनकी ने अपनी बात को बदलते हुए फिर पूछा, ''तब तो उन्होंने कट जरूर ले लिया होगा ।''

''आसानी से नहीं ।'' खैरना ने उसकी ओर देखते हुए कहा था, ''मेरी बातें सुन कर बाबू रूपचन्द हवेली के भीतर चले गए । चार रोजों तक मैं द्वार पर ही कट को लिए बैठा रहा । उन्होंने सोचा होगा कि एक-दो दिन भूखा रहूँगा, तो अपने परेशान होकर लौट जाऊँगा । लेकिन मैंने भी जिद बांध ली थी । अपने मालिक बाबू सलेस का नाम लिया और वहीं चार रोज भूखे-प्यासे रह गया । पाँचवे दिन मालिक सलेस की कनियां की नजर मुझ पर पड़ी । मेरी भी । क्या कहें माँ, कैसी अनिन्ध रूपवती है । इनारे पर जितनी खूबसूरत पनिहारिनें देखी थीं, अगर सबके रूप को मिला दिया जाय तो, वैसी ही रूपवती । मुझे देखा तो उन्हें दया आ गयी । अपने हाथ में सँझवाती लिए ही मेरे सामने आ गयी और फिर उन्हीं बातों को दुहरा गयीं जो उनके पिता बाबू रूपचन्द ने कही थीं । मैंने भी वही बातें सुना दीं, जो पहले कही थीं ।''

''फिर ?''

'कनियाँ ने जरूर माता-पिता से सारी बातें सुनाई होंगी । पता नहीं, रात भर हवेली के भीतर क्या मंत्रणा होती रही । सुबह में बाबू रूपचन्द अपनी पत्नी के साथ बाहर निकले और कट लेने की बात की । और तब कहीं जाकर मैंने भी अन्न-पानी ग्रहण किया, हाँ ।''

''चलो, यह तो बहुत अच्छा हुआ । तुमने बहुत बड़ा काम किया ।

इतना-सा दुख झेलने के बाद किसी के जीवन में इतना बड़ा सुख आ जाए तो वह दुख भी वरदान ही होता है बेटा ।'' टनकी की आँखें खुशी से छलक गयीं ।

''लेकिन आगे की तो बात सुनो माँ, जो तुम्हें सुनाना चाह रहा हूँ'' खैरना ने माँ की ओर बिना देखे एक बड़ा-सा कौर फिर गले के नीचे उतारते हुए कहा, ''जब बाबू रूपचन ने कट ले लिया, तब मालिक बाबू सलेस की कनियां सबसे आँखें बचाते हुए मेरे पास आई और कहा, 'पिताजी दान-दहेज में जो कुछ भी दें, उसे ग्रहण नहीं करना है । उसकी जगह पिताजी से उनका काटल घोड़ा ही मांग लेना'....और मैंने वैसा ही किया.....विदाई का समय आया तो दान-दहेज के साथ बाबू रूपचन ने मेरे हाथों में दो लाल रखे, तब मैंने कहा, 'लाल तो मैं जब चाहूँगा, अपने मालिक से मांग लूँगा, आप मुझ पर इतने ही प्रसन्न हैं तो मुझे अपना काटल घोड़ा दे दीजिए....' और जानती हो माँ, उन्होंने दे भी दिया. ...मुझे क्या मालूम था उस घोड़े के बारे में !.....बैठ कर ऐड़ लगाई तो हवा से बातें करने लगा.....कुछ ही पलों के बाद मैं कनक सिंह के महल के पास था.....बाप रे बाप, उसकी भी अदभुत हवेली थी, अपने मालिक जैसी ही....सुना था, नौ सौ पलटन से घिरी रहती है, हवेली.....झूठ नहीं है....मुझे देखा, तो सैनिक सब 'मारो-मारो' कह कर मेरे पीछे दौड़े....''

सुनते ही टनकी के मुँह से निकली, ''हाय !''

''अरे घबड़ाने की कोई बात नहीं माँ''' खैरना के चेहरे पर प्रफुल्लता की चमक आ गयी थी, ''मेरे घोड़े ने वहाँ जैसे चकरी खाना शुरु की तो, सौ, दो सौ सैनिक वहाँ पर गेंद की तरह इधर-उधर लुढ़कने लगे । मुझे तो हँसी आ गयी.. ....और फिर दूसरे ही क्षण राज पकरिया के रास्ते पर काटल ऐसे दौड़ पड़ा कि धरती पर सावन-भादो की बिजली दौड़ रही हो । बस यूँ समझो माँ कि एक साँस में पाँच कोस पार.....तब मैंने काटल घोड़े का राज समझा.....अब तो मालिक मोतीराम कहें, तो अकेले ही गौना करा के ले आऊँ ।'' खैरना ने बायें हाथ से अपनी छाती को थपथपाते हुए कहा ।

''भगवान न करे बेटा कि तुम्हें फिर इस संकट में कोई फंसाए ।''

''अरे नहीं माँ, अपने पास अब यह काटल घोड़ा है, कोई डर-भय की बात नहीं । इसीलिए तो मैंने छोटे मालिक छेछन पहलवान और कालीकंठ के यहाँ जाना तुरत मान लिया, जब मालिक मोती बाबू ने कहा । ये देखो....।'' खैरना ने कायदे से मुड़े हुए जेब से दो कागज को निकाला और उन्हें दिखाते हुए कहा, ''मालिक छेछन पहलवान और के भांजा मालिक कालीकंठ के नाम ये पत्र हैं, मुझे कल दोपहर होते-होते दोनों को पहुँचाना है । पूर्णिमा के दिन गौना होना है और

पूर्णिमा आने में दिन ही कितने बचे हैं—और पाँच दिन.....बहुत जल्दी-जल्दी चलेंगे तो तीन दिन लग ही जायेंगे—मौजमपुर के रास्ते को पार करने में ।''

''लेकिन बेटा, छेछन पहलवान और कालीकंठ का घर तो कदली और सिझुआ वन को पार कर के जाना पड़ता है, बीजू वन जैसा ही घनघोर.....कैसे जाओगे बेटा ?'' धड़कते हृदय से टनकी ने पूछा ।

''काटल घोड़े पर चढ़ कर माँ.....सब विपत्ति को काटने वाला है । और यह अवसर भी कोई छोड़ता है क्या ? अभी तो रूपचन बाबू से दो लाल मिले हैं । छोटे मालिक छेछन पहलवान और मालिक कालीकंठ के पास संदेश ले के जाऊँगा, तो क्या खाली हाथ लौटूँगा ! लक्ष्मी के लिए आदमी तो समुन्दर पार तक चला जाता है, विधर्मी बन जाता है, मुझे तो सिर्फ दो जंगल पार करना है । बस।'' खैरना ने थाली के आखरी कौर को मुँह में रखा और यह कहते हुए उठा, ''माँ, तुम भी खाना खा लो । फिर बिछावन लगा दो । एक नींद ले लूंगा, तो रास्ते भर थकान नहीं लगेगी । रात के दूसरे पहर ही निकलना होगा, तभी दोनों से मुलाकात हो सकेगी ।''

१३

मौलश्री कुंज में भगवती उदास-उदास-सी बैठी थी और उसे घेरे पाँचो भगवती भी । कोई कुछ नहीं बोल रही थी । एक अजीब-सी नीरवता चारो ओर व्याप्त थी । अगर उस नीरवता को कोई चीज भंग कर रही थी, तो बीच-बीच में छिड़ जाता कोयल का पंचम राग ।

''लेकिन किया भी क्या जा सकता है, कोई रास्ता भी तो नहीं दिखता ।'' शांति को तोड़ते हुए फिर शीतला ने ही कहा ।

''कुछ भी नहीं किया जा सकता है । यह ठीक है कि इस घटना से सलेस की आत्मा ही सर्वाधिक दुखित होगी । मैं ही कहाँ चाहती हूँ कि ऐसा हो । लेकिन इसे रोक लेना भी तो असंभव है, और सभी तरह से अहितकर भी । खैरना, छेछन और कालीकंठ को जैसे ही संदेश सौंपेगा, देखना, दोनों कितने खुश होंगे । खुशी में दंड लगाने लगेंगे । एक ही साँस में कालीकंठ का चौदह सौ और छेछन का एक्कीस सौ इक्कीस दंड लगाने का अर्थ समझती ही हो—कालीकंठ में चौदह सौ और छेछन में इक्कीस सौ इक्कीस पहलवानों की ताकत संचरित हो जायेगी; तब वे दोनों इतने-इतने वीरों को ही धराशायी करने में समर्थ हो जायेंगे ।

और जब, कनक सिंह उत्पात करने पर उतरेगा, तब कौन रोक सकेगा, काल की कुटिल गति को ? सलेस तो यही चाहता है कि रक्त की एक बूँद न गिरे और पाप पवित्र हो जाए । यह संभव तो है, लेकिन इसके लिए पाप को भी पुण्यकामी होना होगा । जहाँ यह नहीं, वहाँ रक्त-लीला भी अवश्यंभावी है । कनक सिंह की हठधर्मिता चरम पर है, सबको पता है ।''

''और उधर सलेस जो साधना पर बैठा हुआ है ।'' हींगा ने जिज्ञासा प्रकट की ।

''यह भी एक किस्म की हठधर्मिता है, जो संभव नहीं । असंभव की प्राप्ति के लिए साधना, पागलपन के सिवा कुछ भी नहीं । यह पूरी सृष्टि सकारात्मक और नकारात्मक तत्वों के योग से गठित है । और ऐसा कभी नहीं हो सकता है कि नकारात्मक को निकाल कर सृष्टि का संचालन किया जाए । नकारात्मक पर विजय पाने की कामना भी व्यर्थ है । सद्मार्ग यही है कि हम अपने तेज से तमस को आलोकित करें और यह कार्य एकान्त में साधना से नहीं, जगत के बीच क्रिया करने से ही होगा । सलेस को यही समझना बाकी है । और अभी मैं उसे समझा नहीं सकती, अन्यथा धामिन बेटियों को दिया गया मेरा सत टूट जायेगा । और यह भी नहीं है कि सलेस इस महासत को कभी नहीं समझेगा। समझेगा, अवश्य समझेगा, लेकिन वह सब होने दो, जिसका होना अभी जरूरी है ।'' भगवती की आँखों में एक रहस्य-सा भाव कहते-कहते उभर आया ।

''तो इसका अर्थ हुआ कि सामरी के गौना के लिए रक्त का उत्सव मनाया जायेगा ।'' धनसर ने बीच में टोका ।

''अभी कुछ भी कहना व्यर्थ होगा । वैसे मैं अपने पुत्र सलेस की इच्छा रखने के लिए इस मृत्युत्सव को अंतिम क्षण तक रोकने की कोशिश करूँगी । मेरी यह इच्छा, न केवल छेछन में, बल्कि कालीकंठ के मन में भी समा जायेगी ।''

''लेकिन सलेस का क्या होगा ?'' धनसर ने फिर पूछा ।

''अभी तो कुछ नहीं हो सकता है । मैं कह भी चुकी हूँ कि सलेस जिस महामंत्र का आकांक्षी है, वह समाज में सत्क्रिया से ही संभव है । और मैं तो मनुष्य की उसी इच्छा और क्रिया को संबल, शक्ति देने का कार्य करती हूँ । चलो उठो, चाहे जैसे भी हो, हमें सलेस को इस सत्य से परिचय कराना ही होगा ।'' इतना कह भगवती उठी, तो अन्य पाँचो भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ी । भगवती दुरखम खाती हुई तेलडीहा की ओर बढ़ी चली जा रही थी ।

१४

सिझुआ वन से निकल कर खैरना कदली वन में प्रवेश कर गया । अमावश की रात में भी ऐसा अन्धकार उसने नहीं देखा था । आश्चर्य था, वन में प्रवेश करते समय उसने पूर्वी आकाश में उजास उतरते देखा था और प्रवेश के साथ ही वन में संध्या उतर गयी थी । वह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता, अंधेरा और भी घना होता जाता ।

और अंधेरे में ही काटल घोड़ा का तीर गति से भागे चले जाना । उसको समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर घोड़े, अंधेरे में दिख कैसे रहा है । आश्चर्य तो यह था कि उसकी देह से वृक्ष का एक पत्ता भी नहीं छुआता । भय से नहीं, वन के बीच बैठी अभी भी शीत के स्पर्श से खैरना कँपकँपा गया ।

दस कोस का कदली वन पार कर जब वह छेछन पहलवान के दरवाजे पर पहुँचा, तो वह बाहर ही खाट पर बैठा मिल गया, जैसे छेछन उसी की प्रतीक्षा में बैठा हुआ हो । खैरना ने पीछे ही घोड़े को एक वृक्ष के नीचे छोड़ा और उसकी ओर बढ़ गया । देखते ही छेछन ने कहा, ''अरे खैरू, आओ-आओ, कहो, मेरे लिए कौन-सा सुखसंवाद लाए हो ?''

''सुखसंवाद ही है पहलवान मालिक । राजा साहब की दुल्हनियाँ के गौने की तिथि पक्की हो गयी है । पूर्णिमा के दिन गौना है । मोती मालिक ने आपको बुलाया है ।'' यह कहकर उसने जेब से पत्र निकाल कर छेछन के हाथ में रख दिया और वहीं जमीन पर गमछी बिछा कर बैठ गया ।

छेछन की आँखें पत्र की एक-एक पंक्ति को ठहर-ठहर कर देख रही थीं । ज्यों-ज्यों उसकी आँखें आगे बढ़तीं, उसके चेहरे की खुशी भी बढ़ती जाती । आखिर तक जाते-जाते वह चुप न रह सका । उन्मादित होते हुए कहा, ''अरी कहाँ हो सलेस की भौजाई, देखो न, देवर मोती का संदेशा आया है । सलेस की दुल्हनियाँ यानी मेरी भौजाई के गौना की तिथि पक्की हो गयी ।''

और उसी खुशी में उसने जोर की एक ताली बजाई । नगाड़े की गूंज-सी गूंज गयी ताली ।

खैरना समझ गया कि छेछन भी तालियों की हाँक से कोई भूत-प्रेत बुलाएगा या फिर कालीकंठ की तरह ही जंगली जानवर । उसे स्मरण हो गया—चिट्ठी पढ़ कर खुशी से पागल बने कालीकंठ ने ऐसी ही ताली बजाई थी और देखते-न-देखते उसके चारो ओर सात सौ बाघ गुर्राने लगे थे । उसने फिर ताली बजाई थी और फिर सात सौ बाघ हुमड़ते आ गये थे । कालीकंठ ने उन बाघों में से दो को चिन्हित करते हुए कहा था—''तुम दोनों को आज से ही मौजमपुर के प्रवेश द्वार पर छुप कर रहना है, घनी झाड़ियों में छुप कर । लेकिन याद रखो, किसी पर भी आक्रमण नहीं करना है, नहीं तो दोनों को उस अपराध का भारी

दंड भुगतना होगा.....''

आश्चर्य था कि कालीकंठ के इस आदेश के बाद सभी बाघ इधर-उधर जंगल में बिखर गये थे ।

अब छेछन पहलवान ने भी वैसी ही ताली बजाई थी । एक बार तो खैरना कुछ सोच कर सिहर गया । अपने ऊपर वह ठीक से नियंत्रण भी नहीं पा सका था कि देखा, घोड़नी सूअरों का जमा होना शुरु हो गया था । गुर्र-गुर्र करते हुए सात सौ घोड़नी सूअर ।

छेछन ने फिर ताली पीटी थी और फिर सात सौ घोड़नी सूअर गुरगुराते हुए उसी जगह आकर इकट्ठे हो गये थे—सभी छेछन की ओर ही अपने थुथने को उठाए, जैसे उसके आदेश की प्रतीक्षा में हों । छेछन ने अपनी अंगुली से दो की ओर इशारा करते कहा, ''ये दो ही मौजमपुर के प्रवेश द्वार पर, आज से ही रहेंगे, आस-पास की झाड़ियों में छुप कर । लेकिन याद रहे, किसी पर प्राणघातक आक्रमण की बात तो दूर, एक सामान भी किसी का बर्बाद न हो, इसका ख्याल रखना । अब जाओ ।''

जैसे धरती पर चट्टानों के बड़े-बड़े खंड लुढ़क रहे हों, कुछ वैसा ही घोड़नी सूअर गुरगुराते हुए जंगल की दिशाओं में बिखर गये । उनका बिखरना था कि छेछन ने खैरना के हाथ में दो लाल रखते हुए कहा, ''तुम लौट जाओ, मोती से कहना, मैं कल शाम तक सलेस को लेकर पकरिया अवश्य ही पहुँच जाऊँगा । गौने की बात है, सलेस साथ नहीं होगा तो बाबू रूपचन्द हजारी क्या सोचेंगे । मोती ने अच्छा किया कि सलेस से मिलने का पता भी लिख दिया.... है ही कितनी दूर चम्पा.....अगर पैदल भी निकला तो भगवान के डूबने में बाँस भर बचा ही होगा कि तेलडीहा पहुँच जाऊँगा । तुम जाओ ।''

इतना कह छेछन घर के अन्दर चला गया । बाहर देर तलक वायुवेग से भाग रहे काटल घोड़े के टापों की आवाज गूंजती रही ।

१५

रह-रह कर सलेस की आँखों से भगवती की छवि ओझल हो जाती । उसका व्याकुल मन सोच नहीं पा रहा था कि क्यों हो रहा है ऐसा ! आज सुबह से ही उसका चित्त क्यों ऐसा चंचल है ! वह रह-रह कर मंत्र क्यों भूल जाता है ? सोच-सोच कर सलेस और भी चंचल हो रहा था । कल तक तो ऐसा कुछ भी नहीं

था । आज यह सब क्यों ? क्यों उसकी सारी इन्द्रियाँ एक साथ सक्रिय हो उठी हैं ? रूप, रस, गंध, स्पर्श और संगीत के लिए क्यों चित्त चंचल हो उठा है ? मंजरों की यह बौराई गंध अचानक ही क्यों प्राणों में ढेर-ढेर उतरती चली जा रही है ? क्यों उसके कान कोयल के पंचम राग सुनने को व्याकुल हैं ? देवी जगह पर रह-रह कर यह कौन आसन ग्रहण कर जाता है—सांवले रूप का प्रभापूर्ण पुरुष—धनुष पर पुष्पवाण का संधान करते ? और इसके साथ ही मेरा भी यह बदन क्यों साँवला पड़ रहा है ? सलेस मन में बोलता जा रहा था ।

बहुत ही व्याकुल मन से वह अपने आसन से उठा और मंदिर के गर्भ-गृह से बाहर निकल आया ।

''तुम ? और यहाँ ?'' छेछन को मंदिर के द्वार पर देख कर उसके चेहरे पर उदासी की जगह आश्चर्य विस्तृत हो गया ।

''हाँ, मैं ही हूँ मित्र । आना पड़ा । बाबू रूपचन्द हजारी जी ने गौने का कट स्वीकार कर लिया है । इसी पूर्णिमा को गौना है । तुम्हें लेने आया हूँ । वर के बिना बारात क्या ?'' हर्षाते हुए छेछन ने कहा ।

''लेकिन, ...।'' छेछन की बातें काटते हुए उसने कहा ।

''मैं जानता हूँ कि मेरी बातें सुन कर तुम क्या कहोगे । सुनो, मैं तुमसे यहाँ जीवन और ज्ञान का रहस्य समझने नहीं आया हूँ । तुम्हे मैं यह कहने आया हूँ कि जो ज्ञान अपने और अपने परिवार के सुख की अनदेखी कर विश्वसुख के लिए व्याकुल दिखता है, वह ज्ञान भी एक एकांगी है, रंगमंच पर अभिनय मात्र है, सम्पूर्ण और वास्तविक सुख से उसका कोई सरोकार नहीं । यह एक तरह का ढोंग भी है, जिसमें न तो उसे प्रकृति का साथ मिलता है, न शक्ति का, न देवी का, न देवता का ।.....मित्र, जब तुम घर को ही शांति नहीं दे पा रहे, तो विश्व को क्या शांति और सुख दे पाओगे ?'' छेछन ने जानबूझ कर सलेस को उत्तेजित करने के लिए ऐसा कहा ।

सलेस एक घड़ी के लिए एकदम मौन हो गया । आँखें बन्द कर मूर्त्तिवत् खड़ा रहा, जैसे किसी जटिल प्रश्न का उत्तर पाना चाह रहा हो ।

''क्या सोच रहे हो सलेस ?''

''कि मनुष्य अपनी असीम शक्ति और संभावनाओं के बावजूद आखिरकार अपने प्रारब्ध के समक्ष खड़ा क्यों नहीं रह पाता ? और जब व्यक्ति के विरुद्ध समस्त प्रकृति ही संगठित हो, तब मनुष्य के पास इसके सिवा दूसरा कोई विकल्प नहीं बचता कि वह वही करे जो प्रकृति चाहती है—उसका परिणाम चाहे जो कुछ हो ।.....मैं आज सुबह से ही अपनी साधना में जिस विघ्न का अविराम हस्तक्षेप

सह रहा हूँ, उससे तो यही अच्छा है कि मैं तुम्हारे साथ पकरिया राज लौट जाऊँ। शायद प्रकृति यही चाहती भी है.....चल चलो मित्र । मैं अभी जिस अशांति से उद्वेलित हूँ, उससे मुक्ति के लिए इससे बढ़ कर अभी और कोई श्रेष्ठ मार्ग भी नहीं दिखता ।'' सलेस के स्वर में जितनी दृढ़ता थी, चेहरे पर उतनी ही शांति ।

छेछन ने कुछ भी नहीं कहा । कुछ भी कह कर वह बनी बात को बिगाड़ना भी नहीं चाहता था ।

१६

राजमाता एक-एक डाले को देख रही थी—किसी में किसी चीज की कमी तो नहीं रह गयी । टिकरी, खाजा, लड्डू.....सबका अलग-अलग डाला । एक ओर रखे दो डाले में गौनयैती-लड़कोरी साड़ियाँ । फिर पाँच डाले में घर भर के लिए भेजी जा रहीं धोती-कमीज और कीमती साड़ियाँ । सबसे अलग रखा है सोने और चाँदी का बना एक छोटा-सा बक्सा । रत्नों से अलंकृत उस बक्से की ओर बरबस सभी की आँखें उठ जातीं ।

राजमाता ने ढक्कन उठा कर देखा—सजे हुए आभूषण को उठा-पुठा कर । सारे आभूषण रखे गये थे—मंगटिक्का, झुमका, पटगुलमेख, जवाहिर माला, कंगन, सोने के पात्र में मिस्सी, बाँक बिजौठा, सोने का किया, बोलता नुपुर, पायल।

हाथ में कंगन को रख कर उसके भार का अन्दाजा लगाया तो राजमाता के चेहरे की चमक बढ़ गयी—पचास भर सोने से कम का नहीं होगा ।

उसके आगे-पीछे लगे छेछन, काली कंठ और मोतीराम भी कम प्रसन्न नहीं दिख रहे थे—राजमाता के बराबर ही ।

राजमाता ने नजरें उठा कर सलेस की ओर देखा, जो पास ही बरामदे पर शीतलपाटी पर बैठा हुआ था ।

''सब ठीक-ठाक तो सजा है ?'' राजमाता ने सलेस के करीब आकर कहा ।

''राजमाता, यह तो वह ही बता सकेगी, जिसके लिए ये सामान सजे हैं । वैसे इन चीजों को देख-देख कर मेरे मन में कई बार यह भाव उठ चुका है कि इन्हें राज के उन गरीब परिवारों में बँटवा दिया जाता तो अच्छा, जिन्होंने अपनी आँखों से यह सुख और समृद्धि नहीं देखी है । अगर सुख और समृद्धि एक जगह

से उठ कर किसी दूसरे सुख-समृद्धि के यहाँ ही पहुँचाती है, तो इसमें खुश होने की क्या बात है । यह तो होता ही है, होता ही रहा है और दुनिया में यह जो इतना दुख है, उसका मूल कारण भी यही है ।'' इतना कह सलेस ने अपनी आँखें दूर आकाश पर गड़ा दी, जैसे आगे वह कुछ भी नहीं कहना चाहता था, कुछ नहीं सुनना चाहता था ।

किसीने यह सुना हो या न सुना हो, लेकिन छेछन ने उसकी बातें सुन ली थीं और साथ ही उन बातों से राजमाता को आहत होते हुए भी देखा था । स्थिति को सामान्य करने के विचार से ही वह सलेस के समीप गया और उसे लेकर दालान पर चढ़ गया ।

सामने ही बड़ी-सी चन्दन की चौकी थी और चौकी पर शीतलपाटी । दोनों बैठ गये तो छेछन ने कहा, ''सलेस, वैराग्य की जो बातें श्मशान भूमि पर मन को सुख देती हैं, वे ही उत्सव-स्थान पर दुख का कारण बन जाती हैं ।''

''लेकिन मैंने ऐसा क्या कह दिया कि कोई दुखित हो जाए । दुख तो मुझे इसका है कि मेरे दुख को न कोई समझता है, न समझना चाहता है । छेछन, मैंने रात भर अपनी नींद में उसी सोनचिरैया को उड़ते देखा, जिसे पिछले दो दिनों से अपनी नींद में देख रहा हूँ । देखा—वह आकाश में ऊँचा ही ऊँचा उड़ता जा रहा था.....कि तभी उसका एक डैना नीचे झूल गया । उसके एक-एक पंख खुल-खुल कर इधर-उधर छितराते हुए धरती पर गिरने लगे थे ।.....अब वह सोनचिरैया उड़ नहीं पा रही थी । बस, बचे अपने एक डैने को और भी तेज गति से ऊपर-नीचे कर रही थी, पता नहीं, अपने को नीचे गिरने से बचाने के लिए, या फिर एक ही डैने के बल पर वह आकाश को पार करना चाह रही थी..... धीरे-धीरे उसके बचे पंख का रंग कपोतवर्णी होता गया था, कहीं कुछ नहीं था—बस उस चिड़िया की चीख थी, जो धीरे-धीरे इतनी बढ़ गयी कि भय से मेरी आँखें खुल गयीं ।''

''तुमने अपने मन को जैसा बना लिया है, आखिर सपना भी तो वैसा ही बनेगा । सपना तो सोच का मायावी रूप होता है । इस वक्त विराग की नहीं, तुम्हें राग की बातें सोचनी चाहिए । सोचो, कि एक अत्याचारी राजा तुम्हारी स्त्री को अपनी ताकत से उठा ले जायेगा, और तुम निर्बल पुरुष की तरह सारे दृश्य देखते रहोगे । तुम्हारी स्त्री कनक सिंह के महल में उसकी सेज पर होगी और तुम..... ।''

''छेछन, तुम मेरे क्षत्रियत्व को चुनौती मत दो । अगर प्रकृति को वही सब स्वीकार है, जिसे मैं नहीं चाहता तो कोई बात नहीं । मुझे भी वह स्वीकार समझो

। बारात चलने की तैयारी करो ।'' सलेस का गौर वर्ण अचानक ही अरुण हो गया था ।

छेछन ने इस बदले रंग को सलेस के सिर्फ चेहरे पर ही नहीं देखा, उसके मन के आकाश पर भी उसी अरुण रंग को गाढ़ा होते हुए देखा । जाने कितने वर्षों के बाद उसने सलेस पर यह रंग चढ़ता हुआ देखा था, शायद ऐसा कभी नहीं।

१७

मौजमपुर के टोले-टोले में खबर आँधी की तरह फैल गयी कि राज पकरिया के बाबू सलेस बारात साज कर चले आ रहे हैं । बच्चे और युवक तो बारात देखने के लिए नगर के मुख्य मार्ग तक आ गये और युवतियाँ अपने-अपने दालान पर चढ़ गयीं । वृद्धाएँ भी पीछे नहीं थीं ।

रूपचन्द हजारी ने देखा, सलेस सबसे आगे-आगे रथ पर सवार है, पीछे घोड़नी सूअर पर छेछन पहलवान, उसके भी पीछे बाघ पर कालीकंठ बैठा चला आ रहा है ।

कालीकंठ के पीछे मोकनी हाथी पर मोतीराम सवार था और सबसे आखिर में काटल घोड़े पर खैरना दुलकते चला आ रहा था ।

उनकी खुशी का तो कोई ठिकाना ही नहीं था । वह अपने साथ हजार सिपाहियों को लिए जमाई के स्वागत में हवेली से बाहर निकल आये । तुरही, तुतरू, मशक बाजा और भेंड़ बाजे के अतिरिक्त रसनचौकी की अलग व्यवस्था । संगीत के स्वर से कोसो-कोस गूंज उठा ।

बराती का द्वार लगना था कि द्वार पर औरतों-युवतियों का झुण्ड ऊपर-नीचे होने लगा ।

पाँच सुहागिनें झुण्ड के सबसे आगे थीं, माँग से लेकर नाक की टुसनी तक सिन्दूर की लम्बी रेखाएँ लिए । गलसेदी का समय आ गया था । स्त्रियों के कंठ से निकले गीले गीत सबको रुलाने लगे,

कहमा के चाँद कहमा कैले जाय मोरा परान हरै
कहमां के गभरू गवन कैले जाय, मोरा परान हरै
पूरब के चाँद पच्छिम कैले जाय मोरा परान हरै
पकरपुर के गभरु-गवन कैले जाय मोरा परान हरै

और उधर, आँगन की ओर, रिश्ते में गाँव की दादी, नानी अलग ही गीत गा-गाकर विह्वल हुए जा रही थीं,

कुस के बोढ़निया गे बेटी सिरहौना लै सुतिहैं
होतैं भिनसरबा गे बेटी अंगना बुहारिहैं
कोयलो सबद गे बेटी माझे हे अँगना
घोलटी खँसली गे बेटी अम्मा के अँचरबा
आबी परलौ गे बेटी, तोहरोॅ गवनमां ।

पूरे नगर की युवतियाँ जैसे द्वार पर आ लगी थीं । उन सबों का शोर-गुल और हँसी-मजाक अलग ।

और सब से ऊपर-ऊपर था बिरिजनाथ के विशाल ढोल का ढमढम और उसी के बीच बच्चे-बच्चियाँ की भाग-दौड़ ।

रात, जैसे खतम ही नहीं होना चाह रही थी । कल ही सुबह द्विरागमन होगा, सोच-सोच कर घर भर की औरतें और सहेलियाँ आकुल-व्याकुल हो रही थीं ।

उधर आँगन में बाबू रूपचन्द, छेछन, मोतीराम, कालीकंठ और खैरना बातचीत में डूबे हुए थे । छेछन विस्तार से बताने में लगा था—"कि किस प्रकार वे सब कनक सिंह की सीमा को पार कर निकल सके, जब बारात मौजमपुर के सिमाने से एक कोस पीछे थी, तभी आँखों में न समा पाने वाला घेरा दिखाई दिया और उसके बीच बड़ा-सा महल, हमलोगों को यह समझते देर न लगी कि यह वही घेरा है, जो सोलह सौ कोस तक फैला है और जिसमें एक ही द्वार है । उसी द्वार से होकर हमलोगों को यहाँ आना भी था ।....यह भी नहीं कि घेरा और द्वार सुनाफड़ हो । जगह-जगह पर कुल मिला कर नौ सौ सिपाही से कम का पहरा नहीं पड़ रहा था । नौ सौ सिपाही वाली बात तो किसको मालूम नहीं । हमलोगों की तो बुद्धि ही जैसे चकरा गयी । लेकिन सलेस के साथ होने से आश्वस्त भी थे, कोई न कोई रास्ता तो निकलना ही था । और हुआ भी । जब घेरे के एकदम करीब आ गये तो सलेस ने कालीकंठ को जमूरा और मुझे जमूरावाला बनने को कहा । योजना यह बनी कि हमदोनों, घेरे के भीतर, मुख्य मार्ग से बहुत दूर हट कर, खेल-तमाशा दिखाएँगे और जब तमाशा देखने घेरे के पहरेदार सिपाही वहाँ इकट्ठे हो जायेंगे, तब सलेस अन्य सेवकों और सवारियों के साथ तेजी से घेरे के बाहर होते हुए नगर में प्रवेश कर जायेंगे, बिना खून-खराबे के फतह हासिल ।.....और वही हुआ । आप सोचेंगे कि आखिर खेल कैसा था कि उसे देखने सारे पहरेदार सिपाही जमा हो गये । कौन विश्वास करेगा ? देखिए, वही सब करके दिखाता हूँ । रात भी तो काटनी है, भोरकवा निकलने से पहले निकलना भी तो है,

भूलिएगा नहीं पिताजी ।'' इतना कह छेछन ने जमीन पर अपनी चादर बिछा दी और कालीकंठ को उस पर लेट जाने को कहा । उसका लेटना था कि छेछन ने दूसरी चादर से उसे पूरा-पूरा ढक दिया । अपनी जेब से डमरू निकला और जोर-जोर से डमरू बजाने लगा ।

रूपचन्द हजारी ने देखा कि आँगन और दालान बच्चे, औरत और मर्द से खचाखच भर गये हैं और छेछन डमरू बजाकर प्रश्न करने लगा है, कालीकंठ उसके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर

''जोगीरा''

''हाँ जी''

''साहबों से बताओ, तुम होश में तो हो ?''

''एकदम होश मे हूँ साहबान ।''

''तो जो कुछ पूछूंगा, बतलाओगे ?''

''बतलाऊँगा ।''

''तो बताओ । बाबू रूपचन्द हजारी जी के पीछे अभी-अभी कौन आकर खड़ा हुआ है ।''

''उनका साला, जो हाथ में हुक्का लेकर आया है ।''

''बिल्कुल ठीक ।''

छेछन ने फिर जोर-जोर से डमरू बजाते हुए कहा; ''बच्चें-बच्चियों, एक बार जोर से ताली बजाओ ।''

इतना कहना था तालियों की गड़गड़ाहट से इलाका गूंज गया । कहा तो गया था, बच्चों को ताली बजाने, लेकिन तालियाँ पीटी थीं युवक, युवतियाँ, औरत, मर्द सबने । रूपचन्द हजारी भी बिना ताली पीटे नहीं रह सके थे ।

उधर तालियाँ पिट रही थीं और इधर रूपचन्द के साले ने अपने लोगों को इशारा करते कहा, ''अरे, अब तो खेल खत्म होने ही वाला है, जरा अपना तमाशा भी शुरु करो ।

हुकुम गहलौत का इशारा होना था कि रंगों की बरसात ऐसी हुई और गुलाल का बादल ऐसा उड़ा कि धरती-आकाश पर फैली चाँदनी लाल-लाल हो उठी । जो भी जहाँ थे, सब मूंगे के चूर्ण से बनी डोलती मूर्त्तियाँ-से लगने लगे । घर के अन्दर गौना के गीत कहीं खो-से गये थे और बाहर धमार की धूम मच रही थी ।

फूलों से, फूलों से, हे देवी भवानी फूलों से
दखिन दिशा नै जइयोॅ बलमुआ, दखिन दिशा बड़ भारी

बाघ, सिंघ तोरा खाय जैथौं, हम धनि रहबौं दुखारी
भवानी फूलों से ।

१८

भगवती ही नहीं, मालती, शीतला, गहेली, धनसर, फुलसर सभी बहनें दक्षिण दिशा की ओर अपलक निहार रही थीं ।

क्या था उस दिशा में ? कुछ भी तो नहीं दिखाई दे रहा था—कोसो-कोस।

सबके चेहरे पर आश्चर्य और उत्सुकता का भाव, लेकिन भगवती के चेहरे पर मुस्कान की गौर छटा फैली हुई थी, जैसे पारदर्शी दुग्ध की धवलता छलक रही हो ।

''लेकिन यह सब क्या कर रहा है सलेस ?'' गहेली ने उसी आश्चर्य में पूछा ।

''अपने कुलदेवता—राहुप की पूजा । जिसे तुम राहू पूजा के नाम से जानती हो ।''

''यह राहुप कौन है ?'' कुछ और आश्चर्य से गहेली ने पूछा, तो उसकी ओर बिना निहारे, उसी भावमुग्धता में डूबी भगवती ने कहा, ''राहुप, महाप्रतापी सम्राट शिलादित्य की पीढ़ियों में होनेवाला, वैसा ही पराक्रमी राजा हुआ । शिलादित्य वल्लभीपुर का सम्राट था । उसके राज्य में विशाल सूर्यकुण्ड था, जिसके किनारे खड़ा होकर शिलादित्य घंटों सूर्य की उपासना करता । और जैसे ही उसे अपने ऊपर शत्रुदेश के आक्रमण की खबर मिलती, वह उसी सूर्यकुण्ड के पास पहर भर आँखें बंद कर सूर्यमंत्र का जाप करता । आँखें खुलतीं तो चांदी-सा चमकता एक दिव्य अश्व उसके सामने होता, जैसे सूर्य के सातो घोड़े से एक निकल कर आ गया हो ।....शिलादित्य उसी घोड़े को अपने रथ से बांधता.....फिर तो वह विजय लेकर ही लौटता ।''

कहते-कहते भगवती के चेहरे पर क्षण भर के लिए मलीनता छा गयी है ।

उसने थके स्वर में फिर आगे कहा था, ''लेकिन वल्लभीपुर के ही एक मंत्री ने यह रहस्य, एक दुष्ट यवन राजा को बता दिया । फिर क्या था, उस यवन राजा ने उस सूर्यकुण्ड में गो-रक्त डलवा दिया, जिस बात से अत्यधिक विचलित होकर शिलादित्य सूर्यमंत्र ही भूल गया । परिणाम यह हुआ कि उस यवन राजा ने

अवसर का लाभ उठाते हुए उस पर भारी आक्रमण कर दिया, जिसे शिलादित्य झेल नहीं पाया और प्रजा की रक्षा में वह अपने प्राणों को युद्धभूमि में ही छोड़ गया ।''

एक क्षण के लिए जैसे निस्तब्ध रात्रि की शांति छा गयी थी । न भगवती के अधर हिल रहे थे, न अन्य भगवती के ।

फिर उदासी को फाड़ते हुए भगवती ने ही कहा, ''लेकिन सृष्टि में न दुख ज्यादा व्यापक है, न अंधकार । अगर ऐसा होता तो दीपते दिन की तरह रातें भी काली ही बनी रहतीं, फिर रातों के अन्धकार को भी चाँद और तारे मिलकर छाँटते ही रहते हैं । दुख जीवन की गति को तो रोकता है, लेकिन जीवन को नहीं है, तभी तो शिलादित्य की पराक्रमी पीढ़ी में फिर राहुप का जन्म हुआ; उसने फिर एक नई बड़ी झील बनवाई; फिर सूर्यपूजा शुरु की । लेकिन इस बार, सूर्यपूजा के साथ-साथ वीरपूजा भी शुरु की—सूर्य के साथ तलवार की भी पूजा, इसी राहुप के कारण प्रारम्भ हुई । यह सलेस उसी पराक्रमी राजा राहुप का वंशज है । वह देखो, सलेस ने स्वयं कैसी सुन्दर झील बना ली है ।''

सभी की आँखें उसी ओर उठ गयीं, जहाँ कुछ देर पहले टिकी थीं ।

सबने देखा, लम्बी-सी बनी झील के दोनों छोरों को गोबर से पवित्र किया जा रहा है, समान्तर सीमाओं पर दो हरौती बाँस की जगह चाभा बाँस गाड़े गये हैं, पन्द्रह हाथों से कम के नहीं होंगे वे ऊँचे बाँस जो ऊपर जाकर लगभग मिले हुए थे । ऊपर से लेकर नीचे तक घी से चिकनाये, शुद्ध हुये; बाँसों से नंगी तलवार बंधी है—दोपहर के सूर्य के तेज प्रकाश से आँखें चौधियाती हुई ।

बुढ़िया भगवती यह कुछ इसी तरह निहार रही थी, जैसे इसके पूर्व उसने यह सब देखा ही नहीं हो । सभी भगवती विष्मयविमुग्ध थीं । देखा—सलेस नंगे पाँव, बिजली की गति से, एक बाँस के शीर्ष तक पहुँच गया है और शीर्ष पर अपने पाँवों को जमाए सूर्य की आराधना में लीन हो गया है । नीचे झील में आम की सूखी लकड़ियाँ बोझी जा रही हैं.....झील में आग प्रज्वलित हो उठी है । घृतधार लपटों को बाँस के सिरे तक पहुँचा रही है.....

मधुमालती की आँखें पल भर के लिए भय में बंद हो गयीं ।

''डरने की कोई बात नहीं'' भगवती ने शांत और स्थिर स्वर में कहा, ''अब सलेस के चारो ओर उसके कुलदेवता की छाया है । और इसके शरीर में सौ सिंहों का बल दौड़ रहा है.....उधर देखो, सलेस क्या कर रहा है ।''

सबने देखा—सलेस अब आग की झील पर खुले पाँव चल रहा है, चेहरे पर सौ सूर्यों की आभा । आग की ठंडी पड़ती लपटों पर उसका चेहरा रक्त कमल बन रहा है दस हाथ चौड़ी आग की झील से सलेस बाहर निकल गया है और

सीधे कनक सिंह के महल-क्षेत्र में प्रवेश कर रहा है । उसके पीछे-पीछे कालीकंठ और छेछन पहलवान भी हैं । बाकी सभी पीछे ही रह गये हैं । घूंघट की ओट से सामरी ने सलेस को देखा है, लेकिन अपने आगे-पीछे सौ से अधिक बारातियों को देखकर तुरत घूंघट को लम्बा खींच लिया है । बारातियों में बातचीत शुरु हो गयी है—आखिर क्यों नहीं सलेस ने उनलोगों को पीछे-पीछे आने का संकेत किया ? आखिर अचानक राहुप पूजा का क्या प्रयोजन ? पालकी के बत्तीसो कहार जहाँ के तहाँ खड़े हैं । रथ का घोड़ा उसी ओर, उसी दिशा की ओर अपलक आँखों से देख रहा है, जिस ओर सलेस गया है । सभी के मन में एक ही आशंका—कहीं कुछ अनिष्ट तो नहीं होने वाला !

''अब क्या होगा ? सलेस तो कनक सिंह के सैनिकों से घिर गया है !'' परेशानी में धनसर ने कहा ।

''तुम देखती तो जाओ धनसर, सलेस की शक्ति को तुम नहीं जानती ।'' भगवती ने उसको शांत करते हुए कहा ।

और उसने सचमुच में देखा कि एक कवचधारी सैनिक, जो सलेस की ओर भारी तलवार लिए दौड़ रहा था, उसको पकड़ कर सलेस ने कुछ इस तेजी से घुमा कर ऊपर की ओर उछाल दिया था कि वह सैनिक कोस भर दूर कनक सिंह के महल के कंगूरे से जा सटा था ।

यह देखना था कि घेरे के मुख्य द्वार के नवो सौ पहरेदार सलेस की ओर झपटे । वे भयावह शोर करने लगे थे । उस शोर को सुन कर कनक सिंह भी अपने सोलह सौ सैनिकों के साथ उधर ही बाज के वेग से बढ़ने लगा । क्रोध से उसका विशाल शरीर पीपल के पत्ते की तरह थरथरा रहा था और उसके सैनिक ऐसे उसके साथ बढ़े जा रहे थे, जैसे शोर करती हवाएँ किसी पर्वत को उड़ाए जा रही हों ।

यह देखते ही छेछन ने जोर की ताली पीटी । न जाने किस दिशा से सात सौ घोड़नी सूअर मुख्य द्वार से होते हुए घेरे में घुसते गये । छेछन ने फिर ताली पीटी और फिर वही सात सौ घोड़नी सूअरों का झुण्ड ।

जैसे हवाओं की गति पर हठात ही रोक लग गयी हो । कनक सिंह के सैनिक शिलावत् जहाँ के तहाँ रुक गये ।

''यह क्या हो रहा है ? सूअरों, इन सूअरो से डर गये ! तब बाघ-सिंह से क्या मुकाबला कर पाओगे !'' कनक सिंह ने उत्तेजना में गुर्राते हुए अपने सैनिकों से कहा ।

कनक सिंह की बातें सुनीं तो कालीकंठ ने जोर की एक ताली पीटी ।

और उसका ताली पीटना था कि घेरे को छलांगते हुए चारो दिशाओं से सिंह भीतर आ गये एक नहीं, दो नहीं, सात सौ—अपने शिकारों को पहचानते और दहाड़ते हुए ।

कि तभी कालीकंठ ने दूसरी ताली दी । सिंहों का प्रवेश, जो थमने लगा था, फिर प्रारम्भ हो गया । सोलह सौ कोसों का घेरा सिंहों और घोड़नी सूअरों से भर गया ।

जब प्राणों पर विपत्ति के बादल उतर आते हैं, तब संकटापन्न मनुष्य प्राण-रक्षा का मार्ग ही सर्वप्रथम खोजता है, और उस समय उसे नीति और न्याय के सूत्र नहीं सताते । कालीकंठ और छेछन भी यह भूल चुके थे कि उन्होंने सिंहों और सूअरों को यह बताया है कि वे, न तो सामान की बर्बादी करेंगे, न किसी का प्राण-हरण । विपत्ति में व्यक्ति का विवेक ही जब साथ छोड़ देता है, तब जीव-जन्तु तो जीव-जन्तु हैं ।

घोड़नी सूअरों के दंत-प्रहार से जहाँ सैनिक और पहरेदार घायल हो रहे थे, वहीं सिंहों के पंजों से घायल बने लहुलुहान ।

''तो तुम्हीं हो सलेस । मैं अभी तुम्हें बताता हूँ ।'' इतना कह कनक सिंह महल की ओर तड़ित वेग से भागा और महल के द्वार को भीतर से बन्द कर लिया ।

''तो सुनो कनक सिंह, अर्गला लगा लेने से कुछ नहीं होगा । आज सारी बन्दी सुहागिनें मुक्त होकर ही रहेंगी, इसीलिए तो मैं इधर आया हूँ । आज तुम्हारे लिए तुम्हारा सुरक्षागार ही, बन्दीगृह से भी ज्यादा भयावह सिद्ध होगा ।'' इतना कह सलेस ने दोनों हाथों से दो सिंहों की पूछें कस कर पकड़ लीं और उन्हें रस्सी में बंधे खिलौने की तरह तेज-तेज घुमाने लगा । इतना तेज कि ऐसा ही लग रहा था, जैसे दो सिंहों की जगह दो रेखाएँ चक्राकर घूम रही हों । और सहसा सलेस ने उन्हें महल की ओर उछाल दिया था ।

कुछ क्षणों के बाद ही हवा में तैरते हुए-से सिंहों ने अपने को नियत्रित किया था और महल की छत पर उतर आये थे ।

सलेस ने इसी क्रम को पाँच बार दुहराया और दस सिंहों को महल के अन्दर कर दिया था ।

देखते-ही-देखते पूरा महल चीख-पुकार के शोर में डूब गया था । एक ऐसा शोर, जो कभी सुना ही न गया था ।

सलेस ने अपना उत्तरीय संभाला और महल के मुख्य द्वार की ओर बढ़ गया । अभी वह महल से बाँस भर दूर ही होगा कि द्वार कड़ाके की आवाज के

साथ खुल पड़ा । शायद सैनिकों ने अर्गला को तोड़ डाला था और वे मुख्य द्वार से निकल-निकल कर इधर-उधर भाग रहे थे ।

वे वृक्ष पर चढ़ते और घेरे के बाहर छलांग लगा देते ।

आगे बढ़ते हुए सलेस ने अपना दायां हाथ ऊपर की ओर उठाया था । कुछ संकेत हुआ था और इसके साथ ही कालीकंठ ने तालियाँ बजाई थीं । छेछन ने भी । उन्मादित सिंह और घोड़नी सूअर अपनी-अपनी गर्दन झुकाए घेरे के मुख्य द्वार से बाहर होने लगे थे, तड़पते-घायल सैनिकों को पंजों और नुकीले दाँतों से इधर-उधर ठेलते हुए ।

उधर महल के मुख्य द्वार से आगे-पीछे आते सिंह भी दिखने लगे । सबकी आँखें अंगारों-सी जलतीं, लेकिन गर्दनें कुछ झुकी हुईं । सलेस के द्वार तक पहुँचते-पहुँचते वे दायें, बायें होते हुए बाहर हो गये थे और दूसरे कई सिंहों की तरह वे भी घेरे को छलांगते उसके पार कर गये थे ।

सलेस ने देखा, सामने ही कनक सिंह का रक्तलथपथ शरीर किसी भयानक दुःस्वप्न की तरह पड़ा था ।

''अन्त में मनुष्य अपने ही कर्मों का भोक्ता होता है ।'' सारी घृणा को समेट कर सलेस ने कहा और महल के बंद कक्षद्वारों को खोलता चला गया था।

जैसे किसी ने फूलों की डालियों को हिला दिया हो और तितलियाँ पंखों को फड़फड़ाती उड़ पड़ी हों । सहमीं, डरी, बन्दिनी युवतियाँ धड़कते हृदयों को लिए बाहर निकल आई थीं । महल से भी बाहर—घेरे के खुले मैदान में । उनकी आँखों में बेचैनी, व्याकुलता का महासागर उमड़ रहा था ।

तभी एक गंभीर स्वर गूंजा । युवतियों ने घूम कर देखा । अभय मुद्रा में अपने हाथों को उठाए सलेस कह रहा था, ''भय और व्याकुलता का एक भी कारण शेष नहीं रह गया है । मैं नहीं जानता कि तुम सब किस मुल्क की सवासिन हो और किस खानदान की कुलवधुएँ; लेकिन इतना तो जरूर जानता हूँ कि अब तुम्हें या तुम्हारी तरह किसी भी कुलवधू को वह यंत्रणा नहीं झेलनी पड़ेगी, जिसे तुमलोगों ने झेली हैं । जाओ, निर्भय होकर अपने-अपने घरों को जाओ, और सबसे कहो कि युगों से प्रताड़ित नारियाँ अब मुक्त हैं । लेकिन अपने साहस और विश्वास को किसी हाल में न खोना, ताकि दुनिया का कोई भी पाप तुम्हें वन्दनी न बना सके ।''

१६

संध्या उतर आई थी । पश्चिम के आकाश पर जैसे गुलाल से भरा सूर्य का विशाल गुब्बारा फट गया हो और पूरा का पूरा आकाश लाल रंग में डूब गया था ।

भगवती ने अपनी आँखें बन्द कर ली थीं, जैसे बंद आँखों से मन के अन्दर बह रही खुशी और अन्तरद्वन्द्व को पहचानने की कोशिश कर रही हो ।

''क्या सोच रही हो दीदी ?'' गहेली ने पूछा ।

''बस यही, कि अगर सलेस सामरी के रूप-रंग में डूबा राज-काज में लीन हो जाता है, तो उसके सन्यासी चित्त का क्या होगा, जो मनुष्य के जीवन को भोग के भँवर से बचाता ही है ।'' भगवती ने कहा ।

''लगता है, तुम मुझसे कुछ छिपा कर ही बोल रही हो । सलेस के सन्यासी चित्त से कहीं, अधिक क्या इसकी चिन्ता नहीं कि जिरुवा-पचुआ को दिए सत् का क्या होगा, अगर सलेस राज-काज और रूप-रंग में रम गया ?''

गहेली की बातें सुन सहसा भगवती की आँखें खुल गयीं और मुस्कराती हुई बोली, ''तुम्हारी शंका, गलत नहीं है । भगवती में सबसे बड़ी होने के नाते, मेरी चिन्ताएँ भी तुमलोगों से ज्यादा बड़ी हैं । वैसे तुमलोग भी जानती ही हो कि सलेस का मन क्या चाहता है और यह भी कि जिरुआ-पचुआ क्या चाहती है । गहेली, मैं जो कुछ भी करूँगी, उसमें सबके मंगल का ही भाव होगा । रचना का कर्त्ता, कृति को कालजयी करने की चिंता से ही आकुल-व्याकुल रहता है, उसके विध्वंश के लिए नहीं, विध्वंश तो वही करता है, जो रचना का कर्त्ता नहीं होता। मुझे तो सलेस जितना प्रिय है, उतनी ही जिरुआ-पचुआ ।.....सच पूछो तो, मेरे मन में वही शंका प्रबल रूप से उठ खड़ी हुई है, जिसकी शंका तुम्हारे मन में है । तुम नहीं समझती हो, मेरी थोड़ी-सी चूक न केवल नारी-जाति को और भी निर्बल बना कर रख देगी, बल्कि मोरंग की उस तंत्रविद्या को भी जड़ से नष्ट कर देगी, जो तंत्र जीवन के अनन्त प्रवाह को जानने का रहस्यपूर्ण पंथ है । एक बड़ी चिन्ता तो यह भी है ।''

''तब फिर, आगे का क्या सोचती हो ?''

''मैंने सोच भी लिया है, वह यह कि सलेस को शृंगार और सिंहासन से, जैसे भी हो, हटाना ही होगा ।''

''यह तो घोर पाप ही होगा ।'' मदमालती ने कहा था ।

''नहीं मालत, नहीं, तुम किसी को पाप तब तक नहीं कह सकती हो, जब तक उसका परिणाम सामने नहीं आ जाता । कभी-कभी ऊपर से जो पाप सदृश दिखाई देता है, वह अपनी परिणति में महापुण्य बन कर उपस्थित होता है, और जो कभी ऊपर से पुण्य-सा प्रतीतता है, वह परिणाम में विषघट के सिवा कुछ नहीं देता । सच्चाई हमेशा वैसी ही नहीं होती, जैसा हम देखते हैं ।'' भगवती सहसा ही गंभीर हो गयी थी ।

''क्या हम सब भी जान सकते हैं कि मेरी दीदी ने आखिर क्या सोचा है ?'' उत्सुकता में शीतला ने पूछा ।

''अभी नहीं बताऊँगी । और बताने का समय भी नहीं है । देख ही रही हो, सामरी की पालकी के आगे-आगे ननुआ सलेस रथ पर चल पड़ा है, पालकी के पीछे छेछन, कालीकंठ और खैरना और इन सबों के पीछे आनन्द से उन्मादित बाराती वृन्द । सुबह होते न होते सलेस राज पकरिया में होगा ।.....मैं जानती हूँ, आनन्द-हर्ष का ऐसा महारास सजेगा कि सलेस के बदन पर फिर कभी कसाय वस्त्र न चढ़ेगा । आदमी एक बार रूप, रस, गंध, स्पर्श और संगीत का अगर एक साथ सुख ले ले, तो वह दुख की स्मृति भर से सिहर उठता है ।.....शीतला, आज की यह मधुयामिनी, कल राज पकरिया में सलेस के महल पर और भी वैभव समेट कर उतरेगी.....यहाँ रुके रहने से कुछ नहीं होगा । मैं चलती हूँ ।''

और दुरखम खाती हुई भगवती अपने आँचल को कमर कसती पकरिया की ओर बढ़ गयी । कुछ ही क्षणों में गाजीपुर पत्तन बहुत पीछे छूट गया था ।

२०

सामरी की आँखों में नींद नहीं थी । दालान पर ननुआ सलेस का शयन-कक्ष । वह कक्ष की एक-एक चीज को जैसे पहचानने की कोशिश कर रही थी । आखिर यह रहस्य क्या था कि कक्ष का कोना-कोना तक मोती-मणि की तरह चमक रहा था, लेकिन बीच के भाग में बस इतना ही प्रकाश था कि किसी चीज को अस्पष्ट तौर पर ही पहचाना जा सके । यह जान कर तो सामरी और भी हैरत में थी, कि जैसे ही उसके हृदय की धड़कनें थोड़ी-सी भी तेज होती, कोने का प्रकाश कुछ और तीव्र हो उठता ।

उसी तेज प्रकाश में उसने धड़कते हृदय से सलेस को देखा था । रत्न मंडित चन्दन के पलंग पर जैसे कोई देवदूत गहरी नींद में सो रहा हो । उसने कल की बातें याद कीं—सलेस हाथों में चक्कर खाते सिंह, और जेठ में तमतमाते सूर्य-सा चेहरा । उसने राजकुमारों की वीरता की कहानियाँ सुनी थीं, लेकिन कल तो अपनी आँखों से देखी थी ।

सामरी का प्यार बेला-सा गदरा गया, रजनीगंधा-सा गमक उठा और जूही सा दीप्त । उसने आँख भर कर सलेस को देखा, वह अब भी उसी गहरी नींद में सोया हुआ था । उसको दुख भी हुआ कि सफर और समर में लाख थकान के बावजूद

सलेस उसकी उपस्थिति को भूल क्यों गया है ! मन में आया कि वह झिझोर कर उसे जगा दे, लेकिन वह ऐसा न कर सकी—यह सोच कर—अगर उसे इसकी चिन्ता नहीं, तो मैं ही क्यों अपनी व्याकुलता दिखाऊँ ?

और यह सोचते ही वह पत्थर-सी हो गयी ।

लेकिन ज्यादा देर तक वह ऐसा नहीं रह सकी । उसने सिहरते हाथ से सलेस की छाती को सहलाया, लेकिन उसकी नींद न खुली । सामरी ने तराशे संगमरमर-से उसके कपाल को अपने रूई की अंगुलियों से सहलाया, लेकिन उसकी नींद नहीं खुली ।

सामरी को लगा, जैसे उसका अपमान हो गया हो । वह आवेश में आ गयी और अपने दोनों हाथों से सलेस को झिंझोर-सा दिया, लेकिन उसकी नींद नहीं खुली ।

सेज पर सोया सलेस जो कुछ क्षण पहले देवदूत-सा लग रहा था, वही उसे लगा, जैसे पत्थर की तराशी हुई मूर्त्ति कोई सेज पर रख गया है—उसके अपमान ओर निरादर के लिए । वह सेज से उतर कर दूर जा खड़ी हुई और पहले अपनी कलाई, फिर गले में फूलों की पड़ी मालाएँ तोड़कर इधर-उधर फेंक दीं, और शायद सलेस को सुनाने के ख्याल से ही तेज-तेज बोल उठी, ''झूठे, कल तो तुम कह रहे थे कि अब किसी भी कुलवधू को यंत्रणा नहीं झेलनी पड़ेगी, उन कुलवधुओं को जाने और निर्भय होकर सबसे कहने कह रहे थे कि युगों से प्रताड़ित नारियाँ अब मुक्त हैं । ढोंगी, तुम भी अन्य पुरुषों के समान ही स्त्री का अनादर करने वाले निकले । और अगर घर की स्त्री का अपमान कर, बाहर की अन्य स्त्रियों के सम्मान की रक्षा के लिए लड़ो, तो भी तुम आधे-अधूरे ही दिखोगे, ग्रहण लगा चाँद अमावश के अन्धकार से ज्यादा भय और शंका ही पैदा करता है ।''

कहते-कहते सामरी का जी कसैला-सा हो गया और नीचे बिछी शीतलपाटी पर जाकर लेट गयी । उसकी धड़कनें बहुत तेज हो गयी थीं और इसी के साथ कक्ष के कोन-कोने का प्रकाश भी और दीप्त, और दीप्त हो उठा था ।

कि सामरी की जैसे साँस ही रुक गयी । बस चीख नहीं निकली, लेकिन आँखें बीच से कटे सिन्दूरिया आम की तरह फैल गयीं । उसने देखा, खिले कदम्ब के आकार का एक भौरा कक्ष के एक कोने से दूसरे कोने तक भय उत्पन्न करने वाला गुंजार कर रहा था । उसकी पूरी देह ही फिर एक बार काँप गयी और वसन्त की पहली ही रात में ग्रीष्म के घाम को मात देती, पसीने की बूँदें चेहरे पर चुहचुहा आयीं ।

सामरी साँसों को बड़ी मुश्किल से रोकती उठी और भौंरे पर आँखें जमाए दबे कदमों से कक्ष के द्वार की ओर बढ़ी । द्वार को खोला । किबाड़ के खुलते ही भौंरा तेजी से उसी ओर झपटा, जैसे वह निकलने का ही कोई सुराग ही खोज रहा था ।

अपनी ओर भौंरे को आते देख सामरी आधी झुकी और फिर घूम कर बाहर की ओर देखा, तो फाटक से थोड़ी दूर पर एक आकृति बैठी दिखाई दी ।

''कौन हो तुम, और यहाँ क्यों हो ?'' सामरी का स्वर सहसा बदल गया था, और स्वयं वह उसके निकट भी आ गयी ।

''घबराओ नहीं बेटी, मुझे तुम अपनी माँ ही समझो । लेकिन, तुम यह तो बताओ कि तुम्हारा यह चेहरा कुम्हलाया हुआ क्यों है ? क्या कहीं सलेस ने तुम्हारा अपमान तो नहीं कर दिया ?'' कहते-कहते आकृति एकदम करीब आ गयी ।

सामरी ने देखा, तीसरे वयस को पार कर रही उस स्त्री के चेहरे पर एक अद्‌भुत आभा थी । जरूर ही किसी कुल-शील सम्पन्न परिवार से होगी । सोचते ही उसने सहज और संकोच में कहा, ''नहीं, वह मेरा अपमान क्यों करेंगे ?''

''मैं कहाँ कह रही हूँ बेटी, यह तो तुम्हारा मलीन हुआ मुँह कह रहा है । कल तुम्हारा चेहरा शरत के चाँद की तरह खिला दिखा था, अभी मेघ भरा सावन का है । कुछ तो बात है ही ।''

सामरी से बात छिपाए न बनी और उसकी आत्मीयता पाकर, मलीन होने की कथा कहती गयी । उसके आँसू उस कथा के साथ बहते गए । कपोलों से लेकर अंगुलियाँ तक आँसुओं से भींगती रहीं ।

''अब चुप हो जाओ बेटी । स्त्रियों का जीवन ही लाखों दुखों को गूंथ कर विधाता ने रचा है, और इसका जीवन तो इन दुखों से उबरने की विधि में ही गुजर जाता है; लेकिन मुक्ति कहाँ मिल पाती है.....सारा जीवन तो रोते ही कट जाता, अगर कुछ क्षणों के लिए सही, इसके भाग्य से गीत-नाच, मेले ठेले का आनन्द भी न बंधा होता । स्त्रियाँ इन्हीं बूंद भर सुखों को विस्तृत कर अपने जीवन को खेप लेती हैं ।.....बेटी, चलो दुन्दभीपुर में भैरोनाथ के हाते में नाच-मेला लगा है । देखोगी, तो मन कुछ हल्का हो जायेगा । और अभी तो ननुआ बाबू गहरी नींद में सोया हुआ है; पता नहीं, सूरज के बाँस भर ऊपर चढ़ने के बाद भी उसकी नींद खुले कि न खुले । तब तक तो मेला देख कर आ जाओगी, चिड़िया चुनमुनाने से पहले ।'' स्त्री ने गहरी आत्मीयता के साथ कहा था ।

''लेकिन इनसे पूछे बिना मैं घर से बाहर कैसे जा सकती हूँ ! आज ही

ससुराल में पाँव रखे हैं, और आज ही मर्यादा के बाहर का यह कार्य ! नहीं, यह नहीं हो सकता । कल किसी ने जान लिया, तो बातें तेज आँधी की तरह उड़ेंगी, तब फूसवाला घर कितनी देर तक बच पायेगा ?''

''अगर इसी का डर है, तो अपने स्वामी से ही आदेश ले लो ।''

''लेकिन वह तो सो रहे हैं—गहरी नींद में ।''

''यही तो मैं भी कह रही हूँ, सिर्फ तुम्हारा स्वामी ही नहीं, पूरा पकरिया राज गहरी नींद में है, तुम्हारे आने की खुशी में यह राज कई दिनों से नहीं सोया था । सोने दो सबको, चलो, तब तक हमलोग मेले से लोट आएँगे । तुम्हारा मन हल्का हो जायेगा ।''

''लेकिन मैं अपने स्वामी की अनुमति लिए बिना नहीं जा सकती ।''

''तो एक बार जा कर देख ही लो, शायद उसकी नींद कमजोर पड़ गयी हो । अनुमति दे, तो चलो, जब चाहो लौट आना, मैं तुम्हें फिर यहाँ तक छोड़ जाऊँगी ।''

''ठीक ही कह रही है'' सामरी ने मन में कहा और अपने कक्ष की ओर मुड़ी । उसके मुड़ते ही स्त्री सोच में डूब गयी, ''कहीं सलेस सहमति देनें में नकार गया तो ! यह भी हो सकता है कि वह कहे—'दुन्दभीपुर जाने की जरूरत क्या है, टकुआ नाच को कल ही अपने द्वार पर बुलवा दूँगा; जितने दिन, जितनी रात चाहो, देखते रहना, लेकिन इसीके लिए दुन्दुभीपुर जाना किस आचरण का पालन होगा—और लगता तो यही है कि इसके सिवा दूसरी बात सलेस कहेगा भी नहीं।''

सोच कर ही वह एकदम परेशान-सी हो उठी । कि तभी उसने सामरी को आते देखा । निकट आ जाने पर उसने पूछा, ''क्या नुनुआ बाबू से अनुमति मिल गयी ?''

''नहीं ।'' बड़ा संक्षिप्त-सा और बड़े विचित्र स्वर में सामरी ने उत्तर दिया था ।

''फिर ?''

''फिर भी मैं जाऊँगी । यह कोई जरूरी नहीं कि पग-पग पर नारी अपने छोटे-छोटे सुखों के लिए भी पुरुष की सहमति की प्रतीक्षा करे । इससे तो नारी अपने जीवन को और भी भयावह बना लेगी और शायद स्त्रियों की ऐसी कुलीनता तो, पुरुषों को सीमा से अधिक अशोभनीय ही बनायेगी । बनाती रही है । मैं क्यों ऐसा करूँ ! यह तो कहो, दुन्दुभीपुर है कितनी दूर ? आखिर जाना तो पैदल ही होगा ?''

''हाँ, रथ की सवारी एकदम ठीक नहीं होगी । रात के सन्नाटे को भंग

करने से तो योजना ही भंग होगी । बस, दो कोस पर तो है दुन्दुभीपुर । तेज-तेज चलोगी तो बस कुछ घड़ी की बात होगी । अब रुको नहीं, चलो ।''

कल ही तो फागुन की पूर्णिमा थी । आज अमावश की पहली रात । एक घड़ी मारकर चाँद आकाश में जो खिला, तो पूर्णिमा का ही भ्रम हो रहा था। मार्ग के दोनों ओर के सघन वृक्षों की पाँत चाँदनी में नहा कर दुधिया हो रही थी, जिसमें छायाएँ भी अपने को छिपाने में बेचैन ।

स्त्री, सामरी के साथ आगे बढ़ी जा रही थी । दोनों ही खामोश—रात्रि की निस्तब्धता की तरह ।

''इस तरह चुप क्यों हो ? कुछ तो कहो कि राह कटे ।'' स्त्री ने कहा था ।

''क्या कहूँ ? वैसे इक बात तो बताओ कि यह जिरुआ-पचुआ कौन है ? वैसे लगता है, ये नाम मैने भी सुने हैं ।''

''क्यों ? क्या बात है ? और अचानक इस समय उनके नाम का स्मरण का क्या अर्थ है ?'' स्त्री ने पूरे वेग से अपने पर नियंत्रण पाते हुए कहा ।

''कुछ विशेष नहीं, लेकिन अनुमति लेने के लिए जब मैं कक्ष में गयी, तो स्वामी नींद में बड़बड़ा रहे थे—'जीरुवा-पचुआ, तुम मोहनी हो, जादूगरनी हो'. ....अनुमति क्या लेती, उल्टे पाँव लौट आई ।''

''मोरंग देस की तांत्रिक हैं दोनों बहनें । जैसा गुण, वैसा ही रूप'' स्त्री ने विचित्र भाव से हाथों को चमकाते कहा, ''यह भी अजीब बात है, जिन दोनों पर सारा मोरंग देस मरता है, वे दोनों सलेस पर मरती हैं ।'' स्त्री ने सब कुछ उसी भाव से सुनाए जा रही थी, जिसे सुन कर सामरी ने बीच में ही कहा ''अब बंद भी करो यह कथा । क्या मुझसे भी अधिक सुन्दर हैं दोनों बहनें ?''

''ऐसा तो नहीं है, लेकिन पुरुष का मन तो जानती ही हो—बहती हुई नाव है, घाट-घाट पर जा कर रुके और स्त्री का मन तो घाट की तरह है, जहाँ पर बना, बस वहीं पर रहा जीवन भर ।''

''नहीं, तुम झूठ कह रही हो'' सामरी का स्वर अचानक तेज हो गया था, ''घाट भी अगम घाट बन जाता है, नाव की पहुँच के बाहर । सब कुछ निर्भर करता है, नदी के बहाव के वेग पर, उसकी गहराई पर । न जाने क्यों, मेरा मन कर रहा है कि मैं नदी हो जाऊँ, घाट नहीं रहूँ ।''

''हर स्त्री यही सोचती है, और सोचते-सोचते वह फिर घाट ही नजर आती है, क्योंकि निर्णय का जब समय आता है, तब उसका संकल्प पुरुष की अनुमति की प्रतीक्षा में दीन खड़ा दिखता है.....कम-से-कम अपने निर्णय को पुरुष के समक्ष

रखने का साहस तो जुटा सके स्त्रियाँ ! नींव नहीं रखी जायेगी तो, कंगूरे की कल्पना कैसी ?''

सामरी ने देखा, उसके साथ की स्त्री ने एक क्षण के लिए उसे देखा था और चुप हो गयी थी । सामरी के पास भी प्रतिकार के लिए जैसे कोई शब्द ही नहीं था । मौन बनी उसके साथ अपने कदमों को बढ़ाती रही ।

हवाओं की सिहरन पर चढ़ी, अब तक ढोल और मृदंग की आवाजें श्रवण-इन्द्रियों को छूने लगी थीं ।

''बस, और दो सौ कदम । जल्दी ही हमलोग दुन्दुभीपुर के भैरवनाथ-हाते में होंगे । देखना, कैसा नाचता है वह छौड़ा—नटुआ नाच । अंग देश में उसके जोड़ का दूसरा नहीं ।''

सामरी ने चुपचाप उसकी बातें सुनी थीं और शीघ्र, दूसरे ही क्षण में, दोनों भैरवनाथ के हाते में थे । लेकिन समस्या यह थी कि गोलाई में खड़े हजारों लोगों की भीड़ में प्रवेश कैसे किया जाय । कहीं से कोई फाँक नहीं दिख रही थी। भीड़ एकदम शांत खड़ी थी, केवल गोल के बीच से मृदंग ओर तबले की आवाजें बाहर तक आ रही थीं ।

स्त्री ने सामरी के दायें हाथ को अपने बायें हाथ में लिया और दक्षिण दिशा से होते हुए गोल के बीच चली आई । वहीं से फिर पश्चिम की ओर घूम कर खड़ी हो गयी । सामरी उसके साथ ही थी ।

तबले की आवाजें और भी गनगनाने लगी थीं । सभी की आँखें टकुआ नाच कर रहे लड़के पर थीं । कोई किसी को देखे, इसका अवकाश नही था । लेकिन यह क्या हुआ—टकुए पर नाच रहा लड़का जमीन पर आ गिरा ।

''यह कैसे हुआ, कैसे हुआ ?'' कोई उत्तर मिलता कि इसके पहले ही वह लड़का चैतन्य हुआ और टकुए पर फिर नाचने लगा । लेकिन अब वह सिर्फ पूर्व की ओर ही चेहरा किए नाच रहा था ।

दूसरे लोगों ने समझा हो या न समझा हो, लेकिन सामरी सब कुछ समझ गयी थी । वह हृदय से गनगना उठी । उसने एक बार भीड़ को अपनी आँखें नचा कर देखा और छिटक कर पूरब की ओर आ गयी अब उसका चेहरा पश्चिम की ओर था ।

नाचते लड़के की आँखें उस पर पड़ीं, तो वह फिर संभल न सका और टकुए से नीचे जमीन पर आ गया । अब भीड़ की नजरें सामरी पर थीं । जैसे सभी ने कुछ अजूबा देख लिया हो, जो कभी नहीं देखा गया ।

उधर तबलची का गुस्सा लड़के पर काफी भड़क आया था । कहा,

''आखिर क्या हो गया है तुम्हें, उम्मीद को आग लगाने पर तुले हो । करमभोड़े, इस नाच पर पाँच लाल मिलने की आशा थी, अब तो एक लाल की भी उम्मीद न रही ।''

तबलची के क्रोध को देखा तो, लड़का फिर उठा और उत्तर की ओर होकर टकुए पर नृत्य के लिए तैयार हो गया, लेकिन तभी उसने सामरी को अपने सामने देखा और वह नाचने के पहले ही लड़खड़ा गया ।

सामरी बच्चे की तरह खिलखिला उठी । भीड़ अब पूरी तरह शांत थी। सबकी आँखें पत्थर की तरह जमीं, अचल, और सामरी पर टिकीं । बस गूंज रहा था तो तबले की जगह तबलची की क्रोध भरी आवाज ।

सामरी ने सोल तिया अड़तालिस भर सोने के कंगन और छाड़ा को उतारा और उस लड़के की ओर फेंक दिया । फिर साड़ी की कोची से लाल के तीन जोड़े निकाले और तबलची की ओर उछाल दिये ।

अब न लड़का का टकुए पर नाच हो रहा था, न ही तबले पर कोई आवाज, लेकिन सामरी का अंग-अंग नाच रहा था, मन के तबले के त्रिगुन और चौगुन की ताल पर । उसे लग रहा था कि वह ज्यादा देर रुकी तो, कहीं सचमुच में नाच न उठे । इसीसे साथ आई स्त्री का हाथ उसने पकड़ा और लहराती हुई भीड़ से बाहर हो गयी ।

सामरी का भीड़ से बाहर होना था कि भीड़ ही उखड़ गयी । अगर देर तक कुछ जमा रह गया था तो सामरी के रूप का वर्णन ।

२१

''यूँ तो भोर की हवा होती ही है संजीविनी, लेकिन आज की तो बात ही अलग है, जैसे रोम-रोम से अमृत की अमरता दे रही है ।'' शीतला ने पुलकित स्वर में कहा ।

''बिल्कुल ठीक कह रही हो शीतला । तो इसका संदेश भी समझो, दीदी कोई बड़ी सफलता लेकर, अत्यधिक मुदित मन से, चली आ रही होगी ।'' धनसर ने भी खिले स्वर में कहा ।

ब्राह्म मुहुर्त्त की बेला । नीड़ों में पक्षीगण चहचहाने को सजग हो गये थे—बस जैसे किसी के संकेत की प्रतीक्षा में चुप हों । स्नेह से भी ज्यादा कोमल और खिली हवाएँ, मुदित बालिका-सी, इधर-उधर भाग रही थी । कि तभी दबे

पाँवों से भगवती पीछे से आई और अपनी चुनरी लहराते हुए पाँचों बहिन के ऊपर रख दी । फिर तेजी से घूम कर उनके सामने आ बैठी ।

''मुझे तो पहले ही मालूम हो गया था कि तुम अपने काम में सफल होकर आ रही हो ।'' फुलसर ने चुनरी को सर से हटाते हुए कहा ।

''लेकिन, क्या यह नहीं जानना चाहोगी कि आखिर वहाँ हुआ क्या ? सब तो नहीं बता पाऊँगी, वह फिर कभी'' भगवती ने हाथ को अंगुलियों से टारने की मुद्रा में कहा, ''अभी तो बस इतना ही जानो कि जब मैं सामरी को लेकर नाच के मेले में दुन्दुभीपुर पहुँची, तो देखवैयों की ठसमठस भीड़ में, वहाँ के राजा के सिपाही भी थे ।.....सबके सब आगे बैठे हुए । उनमें से एक की नजर सामरी पर पड़ी....उसने दूसरे को केहुनी से इशारा किया, दूसरे ने तीसरे को.....और फिर तो सभी सिपाहियों की आँखें सामरी की ओर ही थीं ।.....मैंने देखा, वे एक-एक कर उठने लगे थे और भीड़ से बाहर निकलने लगे.....मुझे यह समझते देर न लगी कि सिपाही अपने राजा से सामरी के रूप का वर्णन करेंगे और फिर सामरी के अपहरण की योजना बनेगी.....बस यूँ समझो कि नाच का खेल खत्म होना था और सामरी का कंगन-छाड़ा लुटाना कि मैंने उसका हाथ पकड़ा और भीड़ को चीरती बाहर निकल गयी ।....नहीं चाहती थी कि सामरी को भावी के बारे में बताकर, उसके सुख को आतंकित करूँ ।....अभी दुन्दुभीपुर और पकरिया राज के बीच में ही हूँगी कि बहुत दूर से टापों की आती आवाजें सुनाई दीं.....क्षण भर में ही मैंने सब समझ लिया.....आँखें बंद कीं, मैं पलक झपकते ही कालीदह पहुँच गई । कालीदह में काली ने सारी बातें जानीं, फिर क्या था, मैं तो बाद में आ सका, इसके पहले दुर्निवार रोगों की सेना उन सैनिकों पर टूट पड़े, जो हमारे पीछे घोड़ों पर भागते उग रहे थे ।'' भगवती ने एक ही साँस में ये सारी बातें सुना दीं ।

''फिर तो मृत सैनिकों का ढूह ही खड़ा हो गया होगा ? अकारथ ही प्राण गये ।'' गहेली ने कहा ।

''हाँ, मुझे भी इसी का दुख है कि अकारथ ही उनके प्राण गये'' भगवती सहसा ही कुछ गंभीर हो गयी थी, ''गहेली, दृश्याभास जगत में प्राणों का आना-जाना तो बना ही रहता है । इसके प्रवाह को कोई हमेशा के लिए नहीं रोक सकता । यति, तांत्रिक कुछ कालखंड के लिए इसे बाधित कर रखे, तो कर रखे, अनन्तकाल के लिए इसकी गति को बांधे रखना तो देवताओं के लिए भी असंभव है, ऐसे में श्रेष्ठ यही है कि हमें जब प्राणों का प्रसाद मिलता है, तब हमारी चिन्ता भी यही होनी चाहिए कि इस जगत और इसके प्राणियों के सुन्दर भविष्य के लिए

हम क्या कुछ करें । लेकिन ऐसा नहीं कर, जब हम मंगल को अमंगल में बदलने को उद्यत होते हैं, तब प्राण भी हमारा साथ छोड़ देते हैं, सच पूछो तो प्राणों का साथ तब ही छूट जाता है, जब मनुष्य बुरे कर्म के लिए सोचना शुरु करता है ।''

''तब ऐसे में हम अपने कर्म को क्या कहेंगे ?''

मालती ने प्रश्न किया तो भगवती ने तिरछी आँखों से उसे देखा और मुस्कराती हुई बोली, ''तुम्हारे अभिप्राय को मैं समझ रही हूँ मालती । वैसे तुम भी यह जानती हो कि हमलोग के कर्म पाप और पुण्य की सीमाओं से मुक्त होते हैं, क्योंकि हमारे कर्म प्राणियों को उन कर्मों में प्रवृत्त करने के लिए हैं, जो उनके लिए निर्धारित हैं, जो उनके संचित कर्मों की परिणति से जुड़े हैं ।''

''अपनी भूल के लिए मैं क्षमा चाहती हूँ दीदी ।'' मालती ने कहा ।

''क्षमा तो मैं भी चाहूँगी कि तुमलोगों को अपने साथ नहीं ले गयी, नहीं तो देखती उस नटुआ का टकुआ नाच और सामरी की सोहदाई ।....अब तो सामरी पर अपने ही रूप का ऐसा वशीकरण चल गया है कि वही हजार रंग लायेगा । और जो होना है, वह तो आज की रात ही हो जायेगा ।''

भगवती ने अपनी मुस्कान को थोड़ा और विस्तार देते कहा था ।

''क्या हो जायेगा आज की रात ?'' सभी भगवती की आँखों में एक ही प्रश्न था, लेकिन उत्तर देने के लिए भगवती तैयार न थी । उसने चुनरी अपने कंधे पर डाली और मौलश्री-कुंज की ओर बढ़ गयी ।

२२

घोड़नी सूअर पर बैठे छेछन ने दूर से ही देखा—सलेस हाते से बाहर एक शिलाखंड पर शांत निर्विकार बैठा है । आँखे शून्य में टंगी हुयीं । क्या नीले नभ में अकेले उड़ रहे चील को देख रहा था, या किसी जटिल प्रश्न के उत्तर में मौन ?

छेछन ने थोड़ी दूर पर ही घोड़नी सूअर को छोड़ा और सलेस के समीप आते कहा, ''नहीं मिली वह महिला । मैंने राज्य की चारो दिशाओं में उसकी खोजबीन कराई, पूछताछ भी, लेकिन व्यर्थ ।'' और थके हाल में वहीं एक शिलाखंड पर बैठ गया ।

''मुझे भी इसकी शंका थी । लगता है, विधि ही मेरे विरुद्ध है । मैं जिससे बचना चाहता हूँ, नियति मुझसे वही करा ले जाती है । पहले कनक सिंह के साथ असंख्य पहरेदार और सैनिकों का प्राणहीन होना, फिर दुन्दुभीपुर के सिपाहियों का

संहार ! कौन है इसके मूल में ? मैंने उस देवकन्या के सर्पिणी बनने और अपनी स्थिति के बारे में तुमसे पहले भी बता चुका हूँ । मेरी साधना भी अधूरी रही तो. ....''

''ऐसा तुम अपने बद्ध विश्वास के कारण मानते हो । ऊपर-ऊपर से देखने पर जरूर स्त्री ही कारण दिखे, लेकिन गहराई में जाने पर, कारण कुछ और ही मिलेगा । पुरुषों ने स्त्रियों को अपने अधिकार की वस्तुएँ मान रखा है, और इसीका नतीजा है यह, जो तुम्हारे मन को तो क्या, किसी भी शांतिप्रिय को अशांत कर सकता है, करता है । और हर पाप के लिए स्त्री को ही दोषी स्वीकार कर लेना, स्वयं अपने आप में महापाप है, एक ऐसा कलंक, जिससे आज तक हम लोग छूट नहीं पाये हैं ।''

''तुम उत्तेजित हो रहे हो मित्र । उत्तेजना, अधिकांश बार अपनी कमजोरी को छुपाने का छल ही होता है । सत्य, विवाद के क्षणों में भी शांत रहता है.....मेरा उद्देश्य स्त्री-जाति को अपमानित करना कदापि नहीं था । मैं तो सिर्फ यही कहना चाह रहा था कि जब भी कोई क्रिया मन की इच्छा की विरुद्ध होती है, तब उसका परिणाम भी हलाहल के समान निकलता है ।.....अभी-अभी तुमने कहा था कि पुरुष स्त्री को वस्तु समझता है, वह मैं नहीं, तुम और इस राज्य की राजमाता समझती हैं, तभी तो गौना पर इतना बल पड़ रहा था । मैंने तो इस ओर कभी ध्यान भी नहीं दिया । शायद तुम यह भी कहना चाहो कि गौना का आयोजन नहीं होता तो, कनक सिंह के बन्दीगृह से उन सुहागिनों की मुक्ति भी नहीं होती । मैं कहता हूँ—होती, अवश्य होती, पापों के परिष्कार के लिए ही तो मैं अपने पंथ का पथिक बना हुआ हूँ । मित्र, जब विशाल बनैले सूअर और सिंह, तुम्हारे और कालीकंठ के इशारे पर डोल सकते हैं, तब मनुष्य, मनुष्य की भद्रता पर क्यों नहीं ? यह ठीक है कि, वह पंथ मुझे भी अभी तक नहीं मिला, तभी तो मुझे सूर्य-पूजा का आयोजन करना पड़ा, अपनी भुजाओं का बल-विमोचन करना पड़ा । और वह सब कुछ हुआ, जिसके मूल में मेरी इच्छा नहीं थी, उसमें, तुम्हारी, कालीकंठ और सबसे अधिक राजमाता की इच्छा थी ।''

''अगर यह थी भी, तो अब क्या होगा ? मान लो, अगर वह भूल ही थी तो उसका अंत भी उसी रूप में करना, यह तो और भी बड़ी भूल होगी ।'' छेछन ने शांत होते कहा ।

''तुम गलत नहीं कह रहे हो छेछन, लेकिन वर्त्तमान से कम नहीं प्रबल होता है भविष्य । सृजन से कभी-कभी अधिक बलशाली सिद्ध होता है विध्वंश, और ऐसा नहीं, तो सृष्टि के आदिकाल से सत्, असत् के सामने दुर्बल क्यों पड़ता

रहा है ? लेकिन मनुष्य है तो हार कैसे मानेगा । अगर असत के साथ भी हम अपने व्यवहार को मानवीय बनाए रखे, तो संभव है, भावी का भाग्य भी बदल जाए ।.. ...अब तुम जाओ, संझवाती की वेला भी खत्म हो चुकी है ।''

लेकिन छेछन के जाने के बाद भी सलेस उठा नहीं । उसी शिलाखंड पर शांत भाव से बैठा रहा ।

कुछ घड़ी व्यतीत कर आकाश पर चाँद भी चढ़ने लगा था । संझवाती के बाद से ही जिस अन्धकार की काली छाया पसरने लगी थी, वह सहसा ही टूट गई । वृक्ष की पत्तियों से, टहनियों से ससर कर चाँदनी धरती पर बिछ रही थी। लेकिन सलेस का मन उधर नहीं जा रहा था ।

रात्रि का प्रथम प्रहर बीत चुका था । एक बार उसे सामरी की स्मृति आई । मन में सोचा, ''वह उसीकी प्रतीक्षा में द्वार पर अकेली खड़ी होगी''—और यह ख्याल आते ही सलेस का चित्त फिर चंचल हो उठा । मन ही मन बोल उठा, ''नहीं, वह मेरी प्रतीक्षा क्यों करेगी । उसे अगर प्रतीक्षा भी होगी, तो उस टकुआ नाच वाले लड़के की, जो सामरी के रूप को देखते ही चंचल हो उठा था, टकुए पर पैर नहीं टिका सका था । सामरी ने पहली बार अपने रूप का यह जादू देखा है । वह जादू, उसे कई सालों तक बांधे रखेगा, शायद उम्र भर ।.....नाच देख कर जब लौटी थीं सामरी, तब मैंने चोर आँखों से उसे देखा था—मेरी उपस्थिति से अपरिचित, वह किस तरह दर्पण के सामने खड़ी अपने रूप पर मुग्ध हुए जा रही थी । कई-कई भंगिमाओं में अपने को निहार रही थी, कानों में नये-नये कुण्डल, गले में नये-नये हार, कलाइयों में नये-नये कंगन पहन कर ।....मिलन की प्रथम रात्रि में ही वह समझ गयी होगी कि मैं रूप की प्रशंसा का अभ्यस्त नहीं, न ही मोहित हो कर अपने पथ से विचलित हो सकता हूँ, और जब ऐसा नहीं हो सकता, तो सामरी मुझे मन से स्वीकार कैसे कर सकती है ! स्वीकार भी करेगी तो ऊपर-ऊपर ही; उसमें आत्मा का आनन्द कहाँ होगा । ऊपर-ऊपर के आनन्द के लिए तो विधाता ने अपनी सृष्टि पर अनन्त सुखों की दुनिया बसा रखी है । लेकिन शाश्वत सुख जिसे कहते हैं, वह देह की धरती पर नहीं, मन के आकाश पर प्रकाशित होता है । इसे अभी सामरी नहीं समझ सकेगी । उसे मैं लाख समझाना चाहूँगा, तब भी नहीं । अभी वह रूप के जादू से अभिभूत है, क्यों नहीं, मैं उसे उसी के रहस्यमय लोक में छोड़ दूँ । ज्ञात नहीं, कब मैंनें स्वप्न में किन अप्सराओं को देख लिया और फिर उन्हें जिरुआ-पचुआ के नाम से संबोधित कर गया—कुछ भी तो स्मरण में नहीं आ रहा है । लेकिन ऐसे स्वप्न का कोई कारण भी तो दिखता है । जो मनुष्य को कहाँ ज्ञात है । कारण ज्ञात हो जाए, तो मनुष्य

स्वप्न का भी मालिक बन बैठे और फिर एक सुन्दर रहस्यलोक अचानक ही अपना सारा आकर्षण खो बैठे । हजार-हजार आशंकाओं और खुशियो का उड़ता हुआ गुब्बारा ही फूट जाए । इसी स्वप्न के कारण तो सामरी भी शंकाओं सें घिर गयी है । स्वप्न की ये शंकाएँ भी अजीब होती हैं । कोई मनुष्य तो क्या, उसका मन भी उसे उनसे बाहर करने की हजार कोशिश करे, तब भी व्यर्थ ! यह कोई आश्चर्य नहीं, अगर मैं स्वप्न में उन नामों को लेकर बड़बड़ा उठा और सामरी ने सच मान लिया । कैसी प्रच्छन्न-सी घृणा उसके चेहरे पर उभर रही थी, जब उसने एक-एक कर मेरे स्वप्न की बातें मुझसे, मेरे उठते ही, कही थीं। मैंने समझाने की कितनी कोशिश की थी, लेकिन सब व्यर्थ....। अब जब तुमने ही मेरे स्वप्न को सत्य मान लिया तो मैं तुम्हारे सत्य को स्वप्न क्यों बनने दूँ । तुम्हारे किसी सोच का विरोधी होकर मैं नहीं रहना चाहता । शायद इस घटना के पीछे मेरे भाग्य का ही कोई रहस्य छुपा हो.....। जाति की मुक्ति की कामना चाहता है, वह तुम्हारे बंधन का कामी कैसे हो सकता है ? मैं आज ही अंगदेस छोड़ दूंगा । मोरंग चला जाऊँगा । तंत्र के उसी रहस्य लोक में, शायद मेरी कामना की मुक्ति वहीं प्रतीक्षारत है'' सलेस ने एक बार अपनी दृष्टि चारो ओर घुमाई और वहीं बुदबुदा उठा ''मेरी मातृभूमि, मैं तुम्हारे लिए ही प्रवास में जा रहा हूँ । शीघ्र ही लौटूँगा।''

चंचल चित्त के साथ ही सलेस उठ गया । उसने आकाश की ओर देखा—चाँद पश्चिमी आकाश पर कुछ लम्बे कद्दू-सा लटक गया था ।

उसने मन ही मन रात्रि के तीसरे प्रहर के बीतने में बची घड़ियों को गिना और त्वरित गति से हथसार की ओर बढ़ गया ।

हथसार के बाहर मैनमा सिपाही सो रहा था । किसी के आने का पदचाप सुना, तो उसकी आँखें खुल गयीं । घूमा, तो सलेस को आते देखा । उसे कुछ समझ में नहीं आया कि रात्रि के इस अन्तिम प्रहर में भला वह इधर क्यों ? कुछ शंका हुई । मालकिन के साथ कहीं अनबन तो नहीं हुई ? उसने अपनी आँखें बन्द करलीं—गहरी नींद में होने के अभिनय में ।

लेकिन अभिनय वह कर न सका । सलेस के निकट आते ही हड़बड़ाकर उठ बैठा और कहा, ''मालिक आप ! और इस वक्त ?''

''हाँ, मैनमा, बिना कोई और जिज्ञासा किए, मुझे तुम इसी वक्त गंगा के तट पर पहुँचा दो । भुरकवा उगने से पहले राज से निकल जाना है । मौकनी हाथी को बाहर करो ।''

''लेकिन मालिक, हौदा तो घर पर ही है ।'' अनिष्ट की आशंका से भयभीत मैनमा ने बहाना किया ।

''कोई बात नहीं है । बिना हौदे के ही मौकनी को खोलो । इसके पहले कि एक भी कोयल की कूक फूटे, बढ़ुआ नदी को पार कर जाना है ।''

आगे कुछ भी बहाना नहीं बना सका था मैनमा । चुपचाप, हथसार से मौकनी को बाहर लाया था । और क्षण भर में ही दोनों उस पर सवार थे । मौकनी की गति से निस्तब्ध रात की देह सिहर गयी थी । ऊँघते वृक्ष सावधान हो गये थे ।

कोई कुछ नहीं बोल रहा था, न सलेस, न मैनमा । दोनों ही अपनी-अपनी सोच से डूबे । उलझे हुए । हाथी बढ़ुआ नदी के घाट-कुघाट को पार करते गंगा की ओर, उड़ते बादल खंड की तरह, बढ़ा जा रहा था ।

आँखों के आगे गंगा की उफान खाती लहरें आयीं तो सलेस ने मैनमा से कहा, ''सुनो, मेरे इस तरह निकलने की सूचना किसी को भी मालूम नहीं हो, न राजमाता को, न भाई मोतीराम को, और न राजबहू को, किसी को भी नहीं ।''

२३

गाजीपुर पत्तन के बावन बीघा वाले मौलश्री वन में अपनी बहनों के साथ मध्य रात्रि में चौपड़ खेल रही भगवती ने सहसा कौड़ियों को समेटते हुए कहा, ''अब खेल बंद भी करो, सलेस गंगा तट पर पहुँच गया है । कुछ ही देर के बाद वह पार उतर जायेगा । साँझ होते न होते वह मोरंग भी पहुँच जायेगा । सत पूरा होने ही वाला है । चलो रथ को सजाओ ! मोरंग जाकर जीरुआ-पचुआ को संवाद तो दे आएँ !''

भगवती के कहने भर की देर थी कि सोलतिया उड़तालीस हाथों का रथ एक योगिन ले आई । मन की गति से भी अधिक तेज चलने वाले घोड़े उससे जुते हुये थे । सफेद बादल-खंडों से घोड़े—हवा में उड़ जाने को व्याकुल ।

''चलो, हमलोग बैठ जाएँ ।'' भगवती ने रथ पर सवार होते कहा । और हवा में अपने दाँये हाथ को लहराया । देखते-ही-देखते सोलह सौ योगिनें, चौदह सौ डाकिनें, हाथों में खप्पर और बोड़नी हत्था लिए, उपस्थित हो गयीं । संबोधन की मुद्रा में भगवती ने फिर हाथ को हवा में लहराया और कहा, ''हमलोग मोरंग देस जा रहे हैं । किसी भी आगत-विगत विपदाओं से पकरिया राज की रक्षा में असावधानी न हो ।''

कहने भर की देर थी कि रथ जैसे हवा में तैरता तड़ित वेग से बढ़ने

लगा । भगवती के बंधे केश और आँचल छोटे-बड़े पताकाओं के रूप में फहर उठे । टापों और चक्कों के नाद से दिशाएँ, बादलों-सी घरघरा उठीं ।

''दीदी ।''

''क्या हुआ ?'' भगवती ने गहेली की ओर मुड़ते हुए पूछा ।

''बस यूँ ही सामरी का स्मरण हो आया । दीदी, अब तुम्हारे सत की तो रक्षा हो जायेगी, लेकिन बेचारी सामरी का क्या होगा ?'' प्रश्नाकुल दृष्टि से गहेली ने भगवती को देखा ।

''कुछ नहीं होगा, अभी कुछ नहीं होगा और शायद कभी कुछ नहीं हो। वह अपने रूप से अभी इतनी ही मुग्ध है कि उसे सलेस के साथ नहीं होने का भी दुःख नहीं होगा । सुन कर तुम्हें आश्चर्य भी हो, लेकिन इसे सच मानो, अभी तो उसके मन और प्राणों पर वह नटुआ ही छाया हुआ है, जो सामरी के सौन्दर्य से बिंध कर बार-बार अपनी चेतना खो बैठता था । हाँ, तुम्हें सचमुच विश्वास नहीं होगा, लेकिन यह सच है कि अभी सामरी के मन में एक ही आँधी उठ रही है, कि कैसे उस नटुआ को पकरिया राज की हवेली में महीनों नचाया जाए । वह नाचे या न नाचे, सामरी का मन अभी सालों उसके पीछे नाचता रहेगा । रूप की आँधी में आत्मा का संगीत ही कहाँ सुनाई पड़ता है । सामरी को अभी शायद सलेस की सुधि भी नहीं आयेगी । और घर में बहू है तो राजमाता भी निश्चिन्त है कि उसका बेटा सलेस अवश्य लौटेगा । हवेली को किसी बात की अभी महीनों सुधि नहीं रहेगी, देखो न, हमलोगों को ही कहाँ सुधि रही कि हम अंगदेस बहुत पीछे छोड़ मोरंग के रास्ते पर हैं ।'' हींगा ने कहा ।

''क्या सचमुच ?'' फुलसर ने घूम कर देखते हुए कहा, ''ठीक ही तो, घाट कोसिलवा, कटघरनी, गौड़ी, कलिया ही नहीं, धमना बहुआ, अजगैबी घाट, नया घाट, अगुआनी भी तो दी सुदूर पीछे रह गये । आश्चर्य है, गंगा दी ने टोका भी नहीं ।''

''यात्रा पर टोक का ख्याल कर ही ऐसा नहीं किया होगा ।'' शीतला ने कहा ।

''तुम ठीक ही कहती हो शीतला । लेकिन कोई बात नहीं, अब हम यहाँ पर रथ रोक देंगे । वो देखो, सामने कोस भर की दूरी पर जीरुआ-पचुआ का महल दिखाई दे रहा है । यहाँ से पैदल ही हमलोग चलेंगे ।'' भगवती ने अपने दायें हाथ को ऊपर की ओर उठाते हुए कहा था ।

और रथ के थमते ही उसके चक्कों से जैसे पचासों यान से एक साथ निकलने वाली घरघराहट भी रुक गयी थी ।

२४

सलेस ने व्यथित हो रहे मैनमा को सभी प्रकार से समझा कर विदा किया । मौकनी ने एक बार घूम कर सलेस को देखा और फिर सूँड़ को अपने एक दाँत से लपेट कर भारी मन से आगे बढ़ गया । सलेस ने भी अपनी आँखें फेर लीं ।

घोर आश्चर्य । उसने देखा, गंगा की धार अचानक ही एकदम विकराल और भयावह बन गयी थी, जैसे सात-सात धारें मिल कर एक हो गयी हों, सात-सात ताड़ वृक्षों की ऊँचाई तक लहरें उठ रही थीं और उन लहरों के उसी वेग से गिरने से सौ-सौ बीघे का धँसना गंगा के पेट में समा रहा था ।

''अवश्य ही किसी अशरीरी का विद्रुप खेल है ।'' सोचते ही सलेस अपनी बंद आँखों से दूर-दूर तक निहारने लगा । तो देखा, गंगा के बीस बाँस ऊपर प्रकाश का एक शरीर स्थिर है, जिसके चारो ओर आकर्षण की अनन्त रश्मियाँ बिखरी पड़ रही हैं, और उन्हीं रश्मियों से बंध कर गंगा की लहरें सात ताड़ ऊपर तक उठ-उठ कर गिर रही हैं ।

उसने आँखें बंद कीं और हाथों को जोड़ प्रार्थना के स्वर में कहा, ''अन्तरिक्ष में स्थिर हे देवी, आप जो भी हों, आप को मेरा प्रणाम है और यह निवेदन भी कि मेरे सुगम मार्ग को दुर्गम न करें । इसके पूर्व कि आकाश में सूर्य की पहली किरण फूटे, मुझे गंगा के पार उतर जाना है ।''

''नहीं सलेस, तुम्हें मोरंग नहीं, पकरिया राज लौटना है । तुम्हें नहीं मालूम, जब सूर्य निकल आयेगा और आज तुम्हारे परिजन, तुम्हारी प्रजा, तुम्हें नहीं पायेगी, तब उनकी क्या स्थिति होगी ! तुम लौट जाओ, इसमें तुम्हारा भी मंगल निहित है ।''

अन्तरिक्ष से नारी-स्वर धरती पर उतर रहा था ।

''यह कभी नहीं हो सकता है देवी, और किसी तरह भी नहीं । मुझे, जैसे भी हो, प्रथम रश्मि के फूटने से पूर्व गंगा के पार उतर जाना है ।'' सलेस ने संकल्प के स्वर में आँखे खोलते हुए कहा ।

''तुम ऐसा नहीं कर सकोगे, क्योंकि इन उठती हुई लहरों को तुम पार नहीं कर सकते ।''

''मेरी शक्ति को नहीं तौलो देवी, मैं भौंरे का रूप धारण कर गंगा पार कर जाऊँगा ।''

''तो मैं गंगा को फूलों की नदी बना दूँगी । तुम विवश होकर नीचे आ पड़ोगे ।'' अदृश्य की हँसी गूंजी थी ।

''ऐसी स्थिति में मैं मक्खी बन कर उड़ जाऊँगा ।''

''तब मैं तुम्हारे लिए गुड़ का महाजाल लहरों पर फैला दूँगी और तुम पकड़े जाओगे ।'' स्त्री की हँसी फिर गूँज गयी थी ।

''तुम ठीक ही कहती हो देवी, मनुष्य जिस रूप में अपने को अभिव्यक्त करता है, वह उसी रूप के व्यवहार का भी आचारी हो जाता है । इसीसे मैं अपने रूप में ही गंगा को पार करूँगा ।''

''तुम ऐसा नहीं कर सकोगे, देख नहीं रहे—गंगा की लहरें सात ताह ऊपर-नीचे हो रही हैं । मैं, गंगा हूँ, अपने प्राणों को ही गवा बैठोगे ।''

''तब तो माँ, तुम ऐसा कभी भी नहीं कर सकोगी । तुम मेरी ही माँ नहीं हो, मेरे देश की ही नहीं, मेरी मातृभूमि की भी माँ हो । हे माँ, तुम स्वर्ग से निकल कर भारत-भूमि को पवित्र करती पुनः स्वर्ग में विश्राम के लिए चली जाती हो । माँ, जो तुम्हारा नाम सौ योजन दूर से भी लेता है वह भी पूर्व के तीन जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है । तुम्हीं सभी तीर्थों की पुण्य भूमि हो । जो तुम्हारे किनारे वास करता है, उसे अष्टांग योग, तप, यज्ञ—सबका ही पुण्य सहज सुलभ हो जाता है । माँ, तुम धरती पर मनुष्यों को, पाताल के नागों को, स्वर्ग में देवताओं को भी मुक्ति देलनेवाली हो और फिर हे माई गंगे, यह अंगप्रदेश तो तुम्हारी दूसरी जन्मभूमि है । महर्षि जह्नु की कृपा से हमें यह पुण्यभाग प्राप्त हुआ है । तब तुम मेरी खुशी में बाधक कैसे हो सकती हो । माँ, मेरे पास अनुनय का भी अब समय नहीं है और मैं यह समझ गया हूँ कि तुम मेरे निवेदन को स्वीकार नहीं करोगी । उधर सूर्य की पहली किरण अब निकली कि तब, बस कुछ घड़ी भर की देर है । माफ करना माँ कि मैं तुम्हारी बातें स्वीकार नहीं कर पाया ।''

अन्तरिक्ष से देवी ने देखा—आहिस्ता-आहिस्ता सलेश की आँखें बंद हो गयी थीं । शरीर स्थिर होने लगा था और उससे मिट्टी के रंग-सा कुछ अलग होने लगा था । देवी को समझते देर न लगी कि वह पृथ्वी तत्व ही था, जो उसकी शरीर से अलग हो रहा था । फिर अद्‌भुत आश्चर्य, सलेस के शरीर पर जल की परतें जमतीं और वे भी पवन के स्पर्श से हट जातीं ।

देवी ने जान लिया कि सलेस अपने शरीर से पृथ्वी और जल तत्व को भारी मात्रा में अलग कर एकदम हल्का हो गया है । अब वह जल्दी ही मूलाधार को सुदर्शन की गति में घुमायेगा और आकाश-मार्ग तक उठ जायेगा । ऐसे में गंगा पार करना ही क्या, पल में मोरंग तक पहुँच जायेगा ।

और वही हुआ । सलेस आहिस्ता-आहिस्ता धरती से दस बाँस ऊपर उठ गया । देवी को नमस्कार किया और वायुवेग से मोरंग की दिशा में उड़ चला।

अन्तरिक्ष में एक अजीब-सा संगीत उसकी गति से उठ गया था, जैसे किसी वाद्य-यंत्र के एक तार को खींच कर किसी ने छोड़ दिया हो और थरथराते तार से काँपती-सी गूंज चारो ओर फैल गई हो ।

२५

जीरुआ और पचुआ अब तक सो रही थी ।

जब भगवती अपनी बहनों के साथ तेरह बीघा में बने काठ की हवेली के दालान पर दनदनाती चढ़ी, तब भी ।

भगवती ने बहनों को रुकने का इशारा किया और उनके शयन-कक्ष की ओर बढ़ गयी । देखा, लाल सेज वाले पलंग पर सुजनी बिछौना बिछा है और तेरह तकिया लगाए दोनों बहनें अलग-अलग दिशा में करवट लिए सो रही हैं । चेतना को शिथिल कर देने वाली मादक सुगन्ध पूरे कक्ष में प्रातः समीर की तरह चंचल है ।

मुग्ध भाव से भगवती ने पलंग का एक चक्कर लगाया । देखा, दोनों के चेहरे पर चीड़ के वृक्षों से आ रही भोर की किरणें जमी हुई हैं, जिस कारण दोनों के चेहरे स्वर्ण कमल-से खिले हुये थे ।

वृक्षों पर चिड़ियों का संगीत सात सुरों में बज उठा था, लेकिन वह संगीत जीरुआ-पचुआ को जगाने की जगह और भी तन्द्रा के लोक में लिए जा रहा था।

''शायद देर रात तक जागती रही है,'' भगवती ने सोचा और किन बातों को लेकर दोनों जागती रही होगी यह सोचते ही वह पलंग से पाँच कदम पीछे हट गयी और दोनों को जगाना शुरू किया, ''उठो नटवा गाँव की मेरी बेटियों, उठो । देखो, सलेस दुधिया पोखर तक पहुँच गया है । इस प्रभात की वेला में उसकी वंशी की कैसी तो धुन गूंज रही है, इसीसे भोर के पाँवों में बेड़ी लग गयी है, नहीं तो सूरज अभी आधा बाँस ऊपर चढ़ आया होता ।.....उठो बेटियो, उठो, जिस पुरुष को पाने के लिए तुम दोनों बहनें बारह वर्ष; फिर तेरह युग तक चोली, कोची, करधानी को कस कर व्रत करती रही हो, वही पुरुष तुम्हारे लोक में आ गया है । उठो जीरुआ उठो, उठो पचुआ, उठो । मेरी बेटियो, उठो । जिसके लिए तुम दोनों ने व्रत के दौरान एक बूँद जल भी जी पर नहीं रखा, वही सलेस तुम्हारे नटवा गाँव

में आ गया है कहीं ऐसा न हो, कि तुम्हारे जगने से पहले लौंगा मालिन जग पड़े। उसे भी तो सलेस का ही इन्तजार है ।''

भगवती के स्वर भौरे की गुंजार की तरह दोनों बहनों के कानों तक पहुँचे तो हड़बड़ा कर दोनों उठ बैठीं । सामने भगवती को देखा तो पलंग से नीचे उतर गयीं । दोनों ही आश्चर्य में थीं । दोनों ने एक साथ ही पूछा, ''देवी, जो कुछ अभी मैंने सुना, वह मेरा स्वप्न था, या तुम्हारे ही वचन को मैं अलस कानों से सुन रही थी ?''

''जो भी तुम दोनों ने सुना, वे मेरे ही वचन थे । मैंने अपने दिए सत को पूरा कर दिया है, मैं तो यही चाहूँगी—तुमदोनों की कामना सिद्ध हो, लेकिन स्मरण रखना—कोई भी कामना, जो लोकमंगल के हित में होती है, वही सिद्ध होकर निधि बनती है, उसे सृष्टि सिर्फ याद ही नहीं रखती, उसकी रक्षा के लिए कवच भी बनती है । जो सुख लोकहित में नहीं होता वह विष है, त्याज्य भी । अब मैं चलती हूँ ।''

भगवती कक्ष से एक कौंध की तरह बाहर निकल गयी थी, लेकिन जिरुआ-पचुआ का इस ओर ध्यान तक नहीं गया । पता नहीं, दोनों ने भगवती की सारी बातें सुनी भी या नहीं । इस समय तो दोनों की आँखों में सलेस की छाया ही घूम रही थी ।

आनन्द के आवेग में जीरुआ-पचुआ एक दूसरे से लिपट गयीं ।

२६

''सलेस, तुम बिना किसी पूर्वाभास के मोरंग आओगे—सोचा भी नहीं था । मैंने तो यही समझा था कि मोरंग तुम्हारे चित्त से उसी तरह हट गया है, जैसे दिन के प्रकाश में चाँद की धवलता । वैसे न जाने क्यों, कभी-कभी मन का यह विश्वास मुझे बेहद उन्मादित कर जाता कि न तो तुम मोरंग भूल सकते हो और न मुझे । आज लगा कि वह मेरा विश्वास झूठा नहीं था.....और अगर वह विश्वास सच निकला है तो क्या पता, यह विश्वास भी सच ही निकले कि तुम मेरे द्वार पर आये हो—मुझे मनाने, अपनी गलती को स्वीकारने.....लेकिन ऐसा होगा भी क्या ? नहीं यह एकदम नहीं होगा । अगर यह होता तो उस दिन क्या मोरंग से उस तरह रुष्ट होकर चले जाते ! मैंने क्या नहीं किया था—तुम्हें रोकने के लिए, मनाने के लिए । अपने सारे अस्तित्व को भुला कर, स्वयं को तुम्हारे पैरों पर रख दिया था। देवता के

चरणों पर फूल की तरह, लेकिन जैसे चढ़ा फूल देवता से उपेक्षित रहता है, वैसी ही उपेक्षित रही मैं तुमसे । तुम्हारी आँखों में अपने लिए आँसू की एक बूँद पाने के लिए मैंने अपना शरीर आसुओं में बरसों भिगोया, लकिन परिणाम क्या निकला ! यही न, कि मैं रेगिस्तान की तरह प्यासी ही रही, बस तुम्हारी स्मृति को रेत में उखड़े पदचिन्हों की तरह अपने मन में लिए हुए । तुम नहीं समझोगे सलेस कि तुम्हें भूलने में कितनी-कितनी यंत्रणाओं के नरक से गुजरना पड़ा है मुझे। तुम्हारी एक-एक छोटी-से-छोटी कमजोरियों को आकाश की तरह फैलाकर देखा है, कुछ इस तरह कि तुम्हारे प्रति मेरे मन में क्रोध जनम जाए, घृणा बन आए। लेकिन सब कुछ के बावजूद वह मैं नहीं कर सकी, जो मैं चाहती थी । यूँ कहो कि जितनी ही दूर तुमसे भागती रही, उतनी ही तुम्हारे नजदीक मैंने अपने को पाया ।.....आज तुम्हें मोरंग में फिर तुम्हें पाकर मेरा, दस वर्षों का वह दुःख, एक साथ एकट्ठा हो गया है । इसे सह सकूँगी मैं ?'' लौंगा मालिन बोलती ही गई थीं ।

''रुको लौंगा, बहो मत ! यह तेज बहाव तुम्हें किसी औघट घाट में न छोड़ दे । वह डूबता जीवन भी कितना धन्य है, जो किसी डूबते को उबार लेता है । सलेस को अब किसी तरह भी कोई नहीं बांध सकेगा । हजारों उपायों को एक साथ लगा देने के बाद भी नहीं । अब तो उसका दुख ही इतना विराट हो गया है कि वहाँ ये छोटे-छोटे सांसारिक दुख न तो कोई आकार रखते हैं, न कोई अर्थ । तब बुद्धिमानी इसी में है उस विराटता को, विराटता में ही ग्रहण करो ।'' घुटते ही उसके मन ने उत्तर में कहा ।

लौंगा मालिन अभी अपनी शंकाओं, अपनी पीड़ाओं को ठीक से बांध भी न पाई थी कि द्वार पर किसी के पदचाप सुनाई पड़े । उसका सारा शरीर ही एक साथ झनझना उठा, जैसे किसी ने सितार के तार को पाँचो अंगुलियों से, झटके के साथ, छेड़ दिया हो । लेकिन शीघ्र ही अपने पर नियंत्रण पाती हुई उसने पूछा ''कौन ?''

''मैं सलेस हूँ लौंगा ।''

'सलेस', सुनते ही लौंगा फिर एक बार पुरवा में पीपल के पात की तरह काँप उठी । लेकिन एक पल के लिए ही । फिर एकदम सावधान होते हुए कहा, ''आ जाओ, द्वार खुला ही हुआ है ।''

मुख्य द्वार को पार कर जब सलेस अन्दर पहुँचा, तो लौंगा बरामदे में ही बैठी दिख गयी । वह सामने जा कर खड़ा हुआ तो कुछ क्षणों के लिए दोनों के बीच एक अजीब-सी शांति छा गयी । तब सलेस ने ही मौन को तोड़ते हुए कहा, ''क्या बैठने के लिए भी नहीं कहोगी ?''

''यह औपचारिकता क्यों ? सलेस, यह आज भी तुम्हारा ही घर है, मेरी अनुमति और मनाही का भला क्या अर्थ !'' लौंगा ने चेहरे पर एक कृत्रिम मुस्कान लाते हुए कहा ।

''इतने वर्ष बीत गये, लेकिन तुम वही हो लौंगा । कुछ अगर बदल गया है तो तुम्हारा वह रूप । भला, तुमने यह रूप क्यों बना रखा है ? एकदम सन्यासिनी का भेष...कितने शोभते थे तुम्हारे हाथों में कंगनी, कंगना, पिछुआ, बाहों में बिजौठा, कमर में डरकस और कमरगोट, गले में हौंसली-हैकल, तो पैरों में पायल, काड़ा, छाड़ा; कुछ भी तो नहीं दिखते ! इनकी जगह बस रुद्राक्ष की ये मालाएँ ?''

''वे सारी चीजें तो तुम्ही अपने साथ ले गये थे, जब तुम मोरंग से जा रहे थे ।'' लौंगा हठात ही भावुक हो गयी थी ।

''मैंने ?'' आश्चर्य से पूछा था सलेस ने ।

''हाँ तुम्ही, और अब पूछते हो, 'मैंने ?' तुम भूल रहे हो सलेस कि मैंने तुम्हें अपना अस्तित्व ही दे देना चाहा था, लेकिन तुम्हें स्वीकार था तो, बस मेरा यही रूप । तुम्हारे जाने के बाद, सालों मैंने अपने को संभाला और आखिर में बेसर, बुलाकी से ही नहीं, अपने ऊपर तुम्हारा अधिकार पाने की आकांक्षा से भी दूर होती गयी । मैं सब कुछ से स्वाधीन होती गयी.....लेकिन स्वाधीन हो कर भी कहाँ स्वाधीन हो पाई । तुम्हारी स्मृतियाँ मुझे घेरती रहीं, और जब भी मैंने उन स्मृतियों से मुक्त होना चाहा, उसने और भी कस कर मुझे बांधा है । तब तुम्ही कहो, इस तरह बंधे होने पर मैं स्वाधीन कैसे हुई ?'' कहते-कहते लौंगा की आवाज कँपकँपा गयी थी ।

''लेकिन सोचो लौंगा, मैंने तुम्हारे साथ प्रेम का कोई अभिनय भी तो नहीं किया था । प्रेम, समर्पण, त्याग, सब कुछ तुम्हारी ही ओर से था । और मुझसे बहुत कुछ पाने की उम्मीद भी तुम अपने एकान्त में कर बैठी । मुझे तो इसका तब पता चला, जब तुमने विवाह का प्रस्ताव ही रख डाला । भला, जगत की मुक्ति के लिए बेचैन मेरा मन इस बंधन को कैसे स्वीकार कर पाता, तुम्ही बोलो लौंगा ।'' सलेस ने बिना कोई चंचलता के कहा ।

''मैं आज भी तुम्हारी इन मुक्ति-भुक्ति की बातों को नहीं समझ पा रही हूँ । जो कुछ समझ पाई हूँ, और समझती हूँ, वह यह कि तुमने मेरे प्रेम का निरादर ही नहीं किया, मेरे स्त्री होने का ही अपमान किया है ।'' लौंगा ने उलाहने के स्वर में कहा था ।

''मुझे मालूम था कि तुम्हारे मन में मेरे लिए एक गलत धारणा जम गयी

है और उसे हटाने के लिए ही मैं तुम्हारे द्वार पर पहले आ पहुँचा हूँ । लौंगा, मैंने न तो तुम्हारे प्रेम का अनादर किया है और न तुम्हारे नारीत्व का । मैं आज भी वही हूँ, जैसा सालो वर्ष पूर्व था । आज भी मैं उसी सत्य की खोज में भटक रहा हूँ, जो धरती पर मनुष्य की वास्तविक मुक्ति है । हिंसा, हत्या, रक्तपात, अविश्वास की जगह प्रेम और विश्वास की शांति का साम्राज्य ।'' खोये हुए स्वर में सलेस ने कहा था ।

''वह तुम्हें मिलेगा भी क्या ?'' लौंगा का स्वर कुछ कसैला-सा हो गया था, ''जब तुम एक प्राणी के दुख का निदान नहीं ढूंढ सके सलेस, तो सृष्टि भर के मनुष्य के सुखों को कहाँ से ढूंढ पाओगे ! घर में ही विश्वास को नहीं बना सके तो समूची धरती पर विश्वास का साम्राज्य क्या बना पाओगे ।'' कहते-कहते लौंगा मालिन की आँखें छलक आयीं ।

उसने अंगुलियों से आँसुओं को हटाते हुए फिर कहा, ''नारियों के साथ यही तो दुर्भाग्य है कि विरोध के क्षणों में भी, क्रोध की जगह उसके आँसू ही पहले निकल आते हैं, फिर उसका क्रोध भी उसी में गल कर बह जाता है और इसी कारण पुरुष स्त्रियों को कमजोर समझ लेने का शिकार भी हो जाता है ।''

''मैंने कभी भी तुम्हें कमजोर नहीं समझा है । आज भी नहीं । अगर ऐसा समझता, तो तुम्हारे पास नहीं आता । मेरी तो यही आकांक्षा है कि तुम पुरुष की प्राप्ति के मोह से ऊपर उठो, जिस तरह कि पुरुष स्त्री की प्राप्ति से कहीं अधिक अपने विराट लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बेचैन रहता है । मेरे ख्याल से, इसी में नारी-मुक्ति भी निहित है । आज तक तुम्हें जिस मोह ने घेर कर सीमित किया है, विश्वास करो, उसके टूटते ही तुम असीमित हो जाओगी ।''

''इस उपदेश के लिए कृतज्ञ हूँ । लेकिन तुम्हारा उपदेश सिर्फ पुरुष को समक्ष रख कर है, स्त्री के मन को समझ कर नहीं । तुम समझते हो कि मुक्ति कोई मौसम है, जिसके आते ही उस मौसम के फल एक साथ पक जाते हैं । मुक्ति ऐसी नहीं है, फिर धरती पर नारी की मुक्ति तो कई-कई चरणों में होती है। उसकी पहली मुक्ति तो उसकी अपनी प्रिय वस्तु पर अधिकार में निहित है, जिससे ही मैं वंचित रह गयी । फिर मेरी कैसी मुक्ति ! और तुम जिसे स्त्री का मोह कहते हो, स्त्री के लिए वही उसका जीवन-रस है, जिसे पीकर वह जीवित रहती है, सुखी होती है ।''

''लौंगा, अब तक तुम्हारे वेश-भूषा में ही परिवर्तन हुआ है, तुम्हारे विचार अभी भी वहीं के वहीं हैं, उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ । यह जान कर मुझे आश्चर्य भी है, और दुख भी ।''

''तुमने सुख को जाना ही कब है ! दुःख को ही देखा है, वही सबको बाँट भी रहे हो । सामरी को कौन-सा सुख देकर यहाँ आये हो ? तुम क्या समझते हो, मुझे तुम्हारे बारे में कुछ ज्ञात नहीं । अंग देस से आने वाली हवाओं से बस संदेश मुझे मिल जाते हैं । मैं तो कहूँगी कि भटके हुए प्राणियों की भीड़ में शामिल हो । पूरी दुनिया को सुख देने के पहले एक-एक व्यक्ति को सुख देने का सत्य जानो सलेस, यही तुम्हारी, मेरी, सबकी मुक्ति होगी । और इसमें कभी भी मेरी जरूरत पड़े तो कहना, मैं इन्कार नहीं करूँगी । नारी अपने अपमान या क्रोध को अपनी करुणा के सामने चिरकाल तक बनाए भी तो नहीं रख सकती ।'' लौंगा का स्वर हठात् ही भींग गया था ।

उसकी बातों से सलेस भी अपने अन्दर कुछ गलता-सा अनुभव करने लगा । ''कहीं वह अपने पथ से विचलित तो नहीं हो रहा,'' यह सोचते ही वह उठ खड़ा हुआ ।

''क्या हुआ ? मेरी बातों से दुखित हो गये ?''

''नहीं ऐसा नहीं है । मैंने समझा था, इतने समय के प्रवाह में और कुछ हुआ हो, या न हुआ हो, जो सालों से साधना के पथ पर है, अब तक उसे यह सत्यबोध अवश्य ही हो गया होगा कि जो व्यक्ति देह या मन के आकर्षण तक ही जीता है, वह आत्मा के आकर्षण से वंचित ही रहता है । देह या मन का आकर्षण अवश्य ही दो जीवों को एक कर सकता है, सम्पूर्ण सृष्टि को एक प्रेम में नहीं बांध सकता, वह तो आत्मा के प्रति आकर्षण ही करता है । लौंगा, क्या तुम्हारे पास देह और मन के मोह से ऊपर आत्मा के लिए आकर्षण का कोई अवकाश नहीं ?.....अभी-अभी तुमने कहा है कि जब भी मेरी जरूरत पड़े, कहना, मैं इनकार नहीं करूंगी; तो मैं तुमसे निवेदन करता हूँ कि मैं जिस सिद्धि की कामना कर रहा हूँ, उसमें तुम मेरे साथ होओ, क्योंकि तुम्हारी सहायता के बिना तो सिद्धि की आराधना भी अधूरी है । मेरी साधना अगर आज तक भी पूर्ण नहीं हो पाई है, तो बस इसीलिए कि भक्ति के क्षणों में भी मेरे चित्त का प्रवाह तुम्हारी ओर ही हो जाती रही है । मेरी मदद करो लौंगा, मैं तुमसे मदद के लिए मोरंग तक फिर लौट आया हूँ ।''

''मोरंग ने भी अंग से अपने को अलग कब किया है । मोरंग ने तो इसे 'मेरा अंग' कहकर ही स्वीकार किया है । मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि अब से मैं तुम्हारे चित्त की चेतना बन जाऊँगी । तुम्हारी सिद्धि तुम्हारे साथ होगी ।''

''मैं इसीकी स्मृति कराने तो तुम्हारे पास आया था लौंगा, कि हमदोनों आत्मा के आकर्षण से अब बंधे हैं । शरीर और मन के मोह से तो हमदोनों अपने

पूर्व जन्म में ही टूट चुके थे । कुछ जो संस्कार रूप में शेष रह गया है, वह बीते जन्म की वासना की ही छाया है । समय है कि हम छाया से भी मुक्त हो जाए। आत्मा का प्रकाश द्वार पर खड़ा है लौंगा । उसके स्वागत के लिए तुम भी अपने को तैयार करो.....''

सलेस अपनी बातें पूरी कर बाहर निकल गया था ।

लौंगा मालिन के हाथ भी नहीं उठे थे कि उसे रोक ले, या फिर मुँह भी नहीं खुले कि कुछ बोल सके । मस्तिष्क में बस एक ही बात चक्रवात-सी उत्पात मचा रही थी, ''शरीर और मन के मोह से तो हमदोनों अपने पूर्वजन्म में ही टूट चुके थे ।''

२७

जीरुआ और पचुआ सलेस की प्रतीक्षा में थी । दोनों को विश्वास था कि सलेस स्वयं ही उसके सामने उपस्थित होगा । लेकिन प्रतीक्षा में घड़ियाँ कटीं, दिन कटे, रातें कटीं, सप्ताह बीते, फिर पक्ष भी बीतने लगा ।

''आखिर क्यों नहीं आ रहा है सलेस ? कहीं मोरंग आने का उसका उद्देश्य और तो नहीं ? क्या हम दोनों की परीक्षा ले रहा है वह ?'' आशंकाओं के मेघ से दोनो के हृदय श्याम पड़ गये ।

''बहन, मुझे तो मालूम हुआ कि सलेस गुरुआइन लौंगा मालिन से मिलने गया था ।'' पचुआ ने आँखें तीरते कहा ।

''नहीं, नहीं, मैंने भी मालूम किया है, सलेस उस दिन से उसी दुधिया पोखर के किनारे ही निवास कर रहा है ।'' जीरुवा ने पचुआ की शंका को निर्मूल करते कहा ।

''लेकिन हमदोनों रात-दिन की उसकी क्रियाओं से तो परिचित नहीं ।''

''सो बात तो है । और अगर सलेस गुरुआइन से मिला है, तो यह अच्छी खबर नहीं है । यह मन का मामला है, असंभव नहीं कि गुरुआइन भी अपनी सीमा को भूल बैठे । प्रेम है ही ऐसी चीज ।'' जीरुआ कुछ ज्यादा ही बेकल हो उठी ।

''तो प्रतीक्षा की जगह सलेस को बन्दी बना कर यहाँ लाना होगा ।''

''लेकिन यह आसान तो नहीं ।'' जीरुआ के चेहरे पर उदासीनता उतर आई ।

''जीरुआ, तुम उदास मत होओ । ये काम हमारी शिष्याएँ करेंगी, जादू के बल पर । तुम देखती जाओ ।'' और यह कह कर पचुआ ने घूम कर डंका पर घनी चोट की ।

डंके की आवाज से हवा थरथरा उठी । मोरंग में कुहराम मच गया । घर-घर के बूढ़ों ने युवकों को बाहर निकलने से मना कर दिया, यह कह कर कि जीरुआ-पचुआ उन्मादित हो उठी है, कुछ-न-कुछ अनहोनी होने ही वाली है ।

कि तभी जीरुआ ने डंके पर दूसरी घनी चोट की । कुछ ऐसी चोट कि हवा पानी तक थरथराने लगे । रास्ते पर चल रही सवारियाँ, जो जहाँ पर थीं, वहीं थम गयीं । श्मशान-सा सन्नाटा चारो ओर व्याप्त हो गया ।

अभी हवा और पानी का थरथराना रुका भी नहीं था कि जीरुआ ने डंके पर तीव्रतम ध्वनि वाली तीसरी चोट की, जैसे प्रलय वाला बादल फट पड़ा हो । हवा-पानी और आकाश एक साथ आन्दोलित हो उठे ।

देखते-ही-देखते डंके के नाद पर आभूषणों का संगीत थिरकने लगा । एक साथ नौ सौ युवतियाँ आ उपस्थित हुई थीं—अप्सरालोक से उतरी हुई परियों की तरह । किरणों से बनी रेशमी साड़ी, बाँक बूटी चोली, बिरनी छत्ता खोपा, काँटी पनमा, कनौसी, जवाहिर माला, अड़तालिस भर सोना के कंगन । काड़े, छाड़े के संगीत से मोरंग गन्धर्वलोक बन गया ।

''क्या आदेश है ?'' कई ने एक ही स्वर में कहा, ''किसलिए हमलोगों को बुलाया गया ?''

''काम सहज नहीं है । एक असहज व्यक्ति को वश में करना है, यही समझो । और यह समझो कि यह काम तुम सब नौ सौ शिष्याओं की परीक्षा भी है ।'' जीरुवा ने अपनी गर्दन बायीं ओर से दाहिनी तरफ करते, सभी को देखते हुए कहा था ।

''हमें फिर क्या करना है ? आदेश हो ।'' कई युवतियों के स्वर एक साथ उठे ।

''सुनो, दुधिया पोखर पर सामान्य वेश में अलौकिक-सा दिखने वाला एक पुरुष मिलेगा, उसे अपने जादू से बांध कर यहाँ ले आओ ।'' पचुआ ने उत्तर की ओर अंगुली से इशारा करते हुए कहा, ''अगर, यह काम एक से संभव नहीं हो, तब नवो सौ मिल जाना । तुमलोगों ने कई देवताओं को अपने जादू से खूंटे में बांध ा रखा है, अब सलेस को भी बांधना है, उसे मनुष्य रूप में बांधो, या चिड़िया बना कर, लेकिन बांधो ! जाओ, तुरत जाओ, रात्रि का तीसरा पहर भी शेष ही होने वाला है ।''

शीश नवा कर जब नवो सौ सखियाँ उत्तर दिशा की ओर बढ़ीं तो पहुँची और पायल के संगीत से लगा भोर हो गया हो । हजारों-हजार चिड़ियाँ जैसे एक साथ ही भोर की आहट पा कर चहक पड़ी हों ।

सब हँसती, मुस्कराती चिड़ियों-सी ही फुदकती और आपस में बतियाती, मुश्किल से पचास डेग भी नहीं बढ़ी होंगी कि उनमें से एक मुंगिया नाम की बलचटिया ने अपने दोनो हाथों को सीधी रेखा में फैलते हुए सबको आगे बढ़ने से रोक दिया । सबका रुकना था कि मुंगिया ने, जो देखने से ही सबमें भिन्न दिखती थी, अपने हाथों की आठ अंगुलियों को ऊपर की ओर किया था ।

संकेत पाना था कि आठ सौ युवतियाँ झुण्ड से निकल और मलकती हुई आगे की ओर बढ़ती गयीं । और देखते-ही-देखते आँखों से ओझल हो गयीं ।

बाकी बची युवतियाँ भी चलीं—हँसती, मुस्कुराती, चिड़ियों-सी फुदकती और आपस में बतियाती ।

''मैं तो सलेस को सुग्गा बना कर अपने सोने के पिंजड़े में रखूँगी ।''

''तुम क्या रख सकोगी सखी, रखूँगी तो मैं । बूँट का दाना खिलाऊँगी। प्यार से बातें करूँगी ।''

''री पगली, बातें करने से क्या होगा । अगर पहिले मैंने उसे सुग्गा बनाया, तो रात भर में ही उसे सिट्ठी बना डालूँगी ।''

''और फिर गुरुआइन के पास छोड़ आओगी । क्या ?''

सारी सखियों की स्मित हठात ही अतिहसित हास्य में बदल गई थीं ।

हँसते-हँसते कुछ की आँखें लाल हो गयीं और कई के मुँह पर हथेलियाँ अब भी पड़ी फूटती हँसी को बलपूर्वक रोके रहने के लिए ।

''लेकिन यह तो बिना उसे जादू का चिलम पिलाए नहीं होगा ।'' हँसते हुए ही उनमें से एक ने कहा था ।

''अरी, तुम चिंतित क्यों हो । वे जो नौ सौ जो आगे बढ़ी हैं, अब तक तो मोरको में सोने के पिंजड़े के साथ, सोने के चिलम भी रख गयी होंगी ।

किसी को भी आश्चर्य नहीं हुआ कि उनके वहाँ पहुँचने पर जगह-जगह पर सुसज्जित नौ सौ मोरको खड़े मिले । प्रत्येक मोरको के भीतर एक पलंग । पलंग पर सुजनी बिछौना । बिछौना पर दो तकिये । सिरहाने, सोने का टंगा पिंजड़ा, पिंजड़े में चाँदी की कटोरी और कटोरी में बूँट के दाने ।

पलंग पर ही पड़ा था सोने का चिलम । चाँदी की गिट्टी । कच्चे दूध में भिंगोया हुआ गांजा और डकरा जादू से बोझा हुआ नारियल का चोलखा ।

सौ मोरको के बीच एक विशेष मोरको भी था । मुंगिया बलचटिया के

लिए ही बना था । उसमें मुंगिया के प्रवेश के साथ ही अन्य सहेलियाँ भी अपने-अपने मोरको में प्रवेश कर गयीं ।

संध्या उतर आई थी । मोरको में मणिदीप प्रज्वलित हो उठे थे और अपनी-अपनी सेज पर सखियाँ सलेस का आह्वान करने लग गईं । आँखों से नींद बैशाख के शीतल बतास की तरह गायब थी । अजीब-अजीब सपने देख रही थीं सब । सलेस सामने खड़ा है, पूछ रहा है, ''इतनी खूबसूरत, तुम किसकी बेटी हो ?'' वह उत्तर देती है, ''तुम यह न पूछ कर यह पूछो कि मैं यहाँ क्यों तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ ?''

—''तुम पुरुष हो या पत्थर ? तुम्हें मनाने के लिए मैं अकेली नारी यहाँ तक आ गयी हूँ और तुम हो कि मूरत-सा बैठे हो ।''

—''माना तुम्हारा दिल बड़ा कठोर है, लेकिन मैं भी नारी हूँ । लगता है, अभी तक नारी-वाण नहीं लगा ।''

सौ मोरको में सौ युवतियाँ । सबके अलग-अलग सपने । सपनों में सौ बातें । रात्रि का दूसरा पहर भी बीतने पर था ।

२८

इस तरह करवटें बदलने से क्या होगा । सलेस को बांध कर लाने में ही कुशलता है । यह सोचते ही मुंगिया सेज से नीचे उतर गयी और द्वार पर लटक रहे जूट के जालीदार पर्दे को उतार लिया । उसे कमरे में बिछाया और दुधिया पोखर की दिशा में अपनी आँखें बन्द कर उस पर बैठ गयी ।

मुंगिया के चेहरे पर अब कोई उद्‌विग्नता नहीं थी । वहाँ चंचलता की जगह स्थिरता उतर आई थी । एक निर्मल शांति थी उसके मुखमंडल पर । पलकों के साथ बरौनियाँ तक एकदम स्थिर, शांत । भृकुटियाँ अर्द्ध चक्राकार में खिंची गयी मोटी रेखाएँ, जिसके मध्य में सलेस की छवि आकर न जाने कब टंग गयी थी । मुंगिया की पलकों से जैसे कोई प्रकाश छन-छन कर बाहर आने लगा था ।

देश और काल सिकुड़ने लगा । मुंगिया ने स्मित दृष्टि से देखा—सलेस प्रकाश की लहरों से बंधा उसी की ओर अवश चला आ रहा था । उसने फिर अनुवृत दुष्टि से देखा—सलेस ही था, कोई भ्रम नहीं । मुंगिया ने आँखें खोलीं । सलेस सामने खड़ा था—निर्विकार, शांत और स्थिर । बस सम आँखों से मुंगिया को निहार रहा था वह । वह उठ खड़ी हुई ।

''बड़े कट्ठर दिल के हो ।'' मुंगिया ने पुतलियों पर पलकों को गिराती और फिर तिरछी आँखों से देखते हुए कहा, ''तुम्हें मालूम भी है कि मैं कितनी देर से तुम्हारी प्रतीक्षा में व्याकुल बनी हुई हूँ । लेकिन कोई बात नहीं, अब तुम आ गये हो तो सारी शिकायत दूर हो गई है । आते-आते थक गये होगे; प्रिय, सेज पर तो चढ़ो ।'' मुंगिया ने अपने बायें हाथ को अपने वक्ष पर और थोड़ा झुकते हुए, दायें को बायीं ओर ले जाते हुए बड़ी विनम्रता में कहा ।

''नहीं, मैं चलकर नहीं आया हूँ रूपसी, तुम्हारे सम्मोहन की तरंगों से बंध कर आया हूँ—तरंगों पर चढ़ कर । इसमें थकने की कहाँ बात है ।'' सलेस ने पहली जैसी ही निर्विकार और सम आँखों से उसे देखते हुए कहा ।

''तो इसे यह कैसे मालूम हुआ ?'' मुंगिया के मन में शंकाओं का ज्वार-सा उठ खड़ा हुआ । लेकिन शंकाओं पर ध्यान देने की जगह उसने अपनी आँखों में और भी स्निग्धता लाते हुए कहा, ''वह मेरा प्रेम ही है, जो तुम्हें बांध कर यहाँ ले लाया है प्रिय । मैं भी तो तुम्हारे प्रेम में ही बंध कर यहाँ दुधिया पोखर तक आ गयी हूँ । क्या न कराए प्रेम । इससे बंध कर तो अप्सरा-लोक की परियाँ भी धरती के मनुष्य की बाँहों में झूल जाती हैं ।''

मुंगिया के वचन में एक अजीब तरह के जादू का असर उतरने लगा था और इसके साथ ही उसके हाथ और पाँव कई प्रकार की भंगिमाएँ बनाने लगे थे । रह-रह कर कमर में एक विशेष प्रकार का बल आ जाता, जैसा कि उसकी गर्दन में । कुछ इस तरह से, जैसे उसका पूरा शरीर ही नृत्य के लिए बेचैन हो ।

लेकिन सामने में सलेस वैसा ही स्थिर खड़ा था । मुंगिया का जी कसेला हो गया । मन में सोचा, ''इस समर्पण पर तो स्वर्ग का देवता मेरी बाँहों में उतर आए, तुम मनुष्य होकर मेरे माथे पर चढ़े जा रहे हो'' लेकिन कहा कुछ भी नहीं।

हतास भाव से वह सेज पर चित्त लेट गयी ।

''इतनी जल्दी क्यों हार मान गयी तुम । तुमने तो अपने जादू से देवताओं को खूटें में बांध रखा है । यह सलेस तो मृत्युजीवी है । तुम्हारे छोटे-से जादू में बंध कर नाच उठेगा'' मुंगिया के मन ने कहा, तो वह चमक कर उठ बैठी ।

सेज से पाँवों को जमीन पर उतारा और उन्हें कुछ इस तरह संचालित करने लगी कि गोड़ गोड़ासी, पायल, बोलता नुपुर, भिन्न-भिन्न स्वरों में एक साथ झंकृत हो उठे । कैसा था उस संगीत का आसव-सा असर ! जागती हुई रात को भी नींद आने लगी । वृक्षों में ही नहीं, पत्थरों में भी एक अंगड़ाई के साथ उन्माद जाग गया । सभी मोरको में सखियाँ सजग हो गयीं और मुंगिया के मोरको की ओर चौकड़ी

भरती आ गयी ।

देखते-ही-देखते सलेस युवतियों से घिर गया । सभी युवतियों के पाँव थिरक रहे थे । हजारों-हजार काड़ा, छाड़ा, बिछिया, एक साथ झंकृत हो रहे थे । प्रकति का रोम-रोम वीणा के तार-सा बज उठा ।

लेकिन सलेस तब भी शिला-सा स्थिर था ।

''सखियों, इस तरह नहीं मानेगा यह मूड़ ।'' मुंगिया का स्वर सहसा बदल गया था, ''पहले अपनी विद्या से इसके शरीर के मिटटी, पानी और अग्नि को निकाल लो, फिर बांध दो किसी खूंटे से ।''

''हमारे समर्पण का उपहास करने वाले को तो दंड मिलना ही चाहिए।'' दूसरी सहेली ने कहा था ।

''चेतना रहते तो यह उपद्रव ही मचायेगा । सबसे पहले इसे चेतनहीन करना होगा ।'' मुंगिया का स्वर आदेश में उठा था ।

आदेश पाते ही युवतियाँ बाहर निकली थीं और कुछ ही पलों के बाद, अपने-अपने हाथों में चिलम लिए लौट आई थीं । सोने के चिलम, जिनमें चाँदी की गिट्टी, डकरा जादू से बोझा गया नारियल का चोलखा और जिस पर कच्चे दूध और कस्तूरी जल में भिंगो कर रखा गया गांजा ।

सलेस के ओठों पर स्मित की रेखा उभर आई । उसने घूम कर सभी को देखा, सभी की आँखों में अनुनय, मनुहार का पूरा माया-संसार उतरा हुआ था । सभी का बस एक ही आग्रह कि वह चिलम को स्वीकार करे ।

किस तरह वह इस अनुनय को अस्वीकार कर सकेगा, और किसका-किसका ? सलेस ने एक क्षण के लिए अपनी आँखें बन्द कीं और फिर कमर से बंधी वंशी निकाल ली । उसे स्नेही आँखों से देखा और ओठों पर रख लिया ।

स्वरों के संगीत का अमृत-प्रपात जैसे फूट पड़ा । देह-देह की नसें जैसे वंशी बन कर बजने लगीं । मन जैसे आत्मा से जुड़ कर असीम आनन्द में डूबा हुआ उब-डुभ । मुंगिया की ही नहीं, उसकी सारी सखियों की ही वैसी दशा बन गयी थी ।

न मन का ख्याल, न तन की सुध । कुछ ही देर तो बजी थी बाँस की वंशी । प्राणों की शून्यता फिर भर गयी थी । दृश्य उभर आये थे, फिर वही सलेस, वही सखियाँ ।

''क्या हो गया था मुझे ?'' सारी सखियों के चेहरे पर एक ही प्रश्न ।

मुंगिया ने सलेस से पूछा, ''अभी-अभी क्या हो गया था मुझे ? वह कैसा

लोक था, जो अभी मैंने देखा ।'' उसकी आँखों में विष्मय और दीनता के भाव उभरे हुए थे ।

''रूपसी, वह लोक तो तुम्हारे अंदर ही है, तुम सबके अन्दर । दुःख है कि तुमलोग उसे देख नहीं पाती, न उसमें बह ही पाती हो, और न डूब ही पाती हो । डूब भी कैसे सकती हो, जब तक तुम्हारे हाथों में मन और शरीर को उन्मादित करने वाली नशीली चीजें होंगी । तुम सबों से तब तक वह लोक छूटा ही रहेगा, जो आत्मा का लोक है । दुख तो यही है कि हमारे सारे उपक्रम, मन और शरीर को उन्मादित करने के लिए ही हो रहे हैं । यह जो इतनी घृणा है, भोग की प्रबल इच्छा है, सारे सुखों के बीच आत्मा का सुख नहीं है, इसकी शांति खो गयी है, वह देह और मन को बाहर से उन्मादित करने के इसी मायाकृत्य के कारण । इस कृत्य से देह की जड़ता चाहे जितना सुख अनुभव करे, इससे आत्मा का हाहाकार उतना ही तीव्रतम होकर मन में भटकता रहता है । रूपसी, धुआँ वह चाहे मिट्टी के पात्र से उठे या स्वर्ण-पात्र से, शरीर और मन को दुखित ही करता है, आँखों को सुख नहीं दे सकता ।''

सलेस का संकेत समझ कर मुंगिया ने हाथ में रखे सोने के चिलम को जोर से दुधिया पोखर की ओर उछाल दिया । एक छप की आवाज हुई । और फिर छप-छप की एक शृंखला बनती-सी गयी । ऐसा प्रतीतता था, जैसे सरोवर से स्वर्ण मछलियाँ ऊपर की ओर उठ कर पुनः सरोवर में गिर रही हों ।

''मैं भ्रम में थी देव, क्षमा ।'' अत्यधिक विन्नमता में मुंगिया ने हाथों को जोड़ते कहा ।

''मनुष्य को अपने भ्रम का ज्ञान हो जाए तो, मुक्ति का रास्ता ही खुल जाता है । भ्रम ही मनुष्य को भोग में भी लिप्त करता है, सिर्फ भव-सागर में भटकाता ही नहीं । इसी भ्रम ने हमारी शक्ति को भी भटका दिया है, जिसके कारण हम अपनी शक्ति का प्रयोग मनुष्य के मंगल के लिए नहीं, इसके अनिष्ट के लिए करने लगे हैं और धरती पर अशांति का यही कारण भी बन गया है । रूपसी, अंग और मोरंग ने अतीन्द्रिय शक्तियों का जो विपुल कोष अपनी निरन्तर साधना से अर्जित की है, उसका अमंगल प्रयोग, अंग और मोरंग के लिए ही अनिष्टकारी नहीं होगा, यह समूची भूमि ही अशांत हो जायेगी ।.....मनुष्य की शांति के लिए तो हृदय के हिमप्रदेश पर चलना होगा जहाँ अमृत का प्रपात झरता है, जहाँ श्रद्धा की विस्तृत वनस्थली है, द्वेष या हिंसा का रेगिस्तान नहीं । उसी वनस्थली के बीच कल्प-कल्पान्तर से बजती आ रही है वंशी । बाहरी वंशी की लय को, बस उसी वंशी की लय से मिलाने की जरूरत है, तब यह बाहर की दुनिया भी वैसी ही हो

जायेगी, जैसी आत्मालोक की है । और यह किसी एक व्यक्ति की साधना से नहीं होगा । संघ का संघ जुड़ेगा, तभी होगा । अकेली अनुकूल शक्ति विपरीत शक्ति के व्यूह में पड़ कर या तो गतिहीन हो जाती है, या फिर मतिभ्रष्ट । चाहे कारणपात्र में कारणवारि हो या सोने के चिलम में दूध और कस्तूरि जल से भिंगोया गया गांजा । न ये आत्मा की मुक्ति में सहायक हैं, और न मनुष्य की मुक्ति में । पुरुष का वह धर्म विनिष्ट हो जिसका प्रयोजन ही स्त्री-सुख है और स्त्री का वह धर्म भी विनिष्ट हो, जिसका लक्ष्य पुरुष-प्राप्ति है।''

भुरकवा उग आया था । यह कहना कठिन हो गया था कि सूर्य की उतरती किरणों से सलेस का मुखमंडल दीप्त हो गया था या उसके मुखमंडल की दीप्ति ही आकाश के पूर्वी क्षितिज पर प्रतिबिम्बित हो उठी थी ।

मुंगिया ने देखा कि इतना बहुत कुछ होने के बाद भी सलेस के चेहरे पर कोई विकार न था । वही माधुर्य, वही धैर्य, वही गांभीर्य, वही शोभा, वही औदार्य और वही तेज, जो उसने पहली बार सलेस में देखा था ।

अजीब भाव से भर गयी थीं सारी सखियाँ । और सलेस की वंशी फिर बज उठी थी । जीरुआ-पचुआ की सारी शिष्याएँ बांसुरी की उस लय में अवश बह चली थीं, जैसे नदी के बीच धारा में कागज की नावें—एक ही दिशा में, एक ही गति में ।

२६

बिच्छू के विष की लहर, पैर से पिण्डली और फिर नाभि में आकर सिमट गयी हो, ऐसा ही कुछ जिरुआ-पचुआ जाने कितनी ही देर से महसूस कर रही थी और रह-रह कर उस लहर को शांत करने दोनों की हथेलियाँ कभी पिण्डलियों और कभी नाभियों को सहलाने लगतीं । ऐसा तो कभी नहीं अनुभव किया था दोनों ने । दूसरी ओर चिंताएं अलग । क्या कर रही हैं चटसारिनें ? अभी तक सलेस को लेकर पहुँचीं क्यों नहीं ? कहीं ऐसा तो नहीं कि स्वयं सभी उसके मोहपाश में बंध बैठीं और सलेस सबका स्वामी बन बैठा है ?'' जाने कितनी-कितनी शंकाएँ, कितनी ही देर से दोनों को घेर हुए, बेचैन कर रही थीं ।

जाने कितनी बार दोनों दौड़ कर बाहर निकली होंगी, यह देखने कि सलेस को लाया भी जा रहा है या नहीं; कितनी बार दोनों ने बार-बार सजी सेज को फिर-फिर से सवारा होगा, कितनी बार गालों पर ढुलक आये आँसू को आँचल

से पोछा होगा और जाने तो कितनी बार सलेस के रूप-गुण की प्रशंसाएँ की होंगी दोनों ने ।

''पचुआ, इस तरह सेज पर करवटें बदलने से तो यही अच्छा होगा कि स्वयं चल कर सलेस को उठा लाएँ । उन चटसारिनों का क्या भरोसा । कहीं सबकी सब उस पर आसक्त न हो बैठी हों । इसमें नीति-अनीति वाली बात भी नहीं । हमदोनों ने भी तो सलेस के बारे में अपनी गुरुआइन लौंगा से ही सुना था और यह जानते हुए भी कि सलेस की अब तक प्रतीक्षा कर रही है लौंगा गुरुआइन, हम दोनों सलेस पर अधिकार करने पर तुल गये हैं । तब हमारी चटसारिनें भी ऐसा कर बैठे तो क्या अचरज !'' कहते-कहते जीरुआ उद्वेग से भर उठी ।

और पचुआ की आँखें बड़ी-बड़ी कौड़ियों-सी फैल गयीं । भयभीत हुई-सी बोल पड़ी, ''कहीं तुम्हारी शंका सही ही न हो । रात के अन्तिम पहर से ही मेरी दायीं ओर के ललाट, भौं, आँख, नासिका, ओठ, बाहें और छाती फड़क रही है, लेकिन तुमसे बताया नहीं ।'' कहते-कहते वह अचानक ही कहीं खो गयी थी । उसके हाथ की माला ससर कर निचे गिर पड़ी, तब भी उसका ध्यान न टूटा।

''अब बताने की कुछ भी जरूरत नहीं । जिसके साथ जीवन का एक क्षण भी बिताने का सुख नहीं मिला, फिर भी उसे प्रिय, कान्त, विनीत, नाथ, स्वामी, जीवित और नन्दन कह कर पुकारती रही, वही दुःशील, दुराचारी, शठ, वाम, विरुदिका, निर्लज्ज और निष्ठुर निकला । उसके लिए अब अश्रुविमोचन व्यर्थ है । दंड से ही सलेस वशीभूत होगा ।'' फड़फड़ाते ओठों से जीरुआ बोल पड़ी और आवेश में घूम कर डंके पर एक सघन प्रहार किया ।

डंके की आवाज एक भारी गूंज के बाद देर तक थरथराती रही । देर तक हवाएं भी थरथरायीं । मोरंग में कुहराम मच गया । घर से बाहर निकलते युवकों को बूढ़ों ने खींच कर अन्दर कर लिया ।

डंके पर दूसरी चोट हुई । हवाओं के साथ नदी और सरोवर के जल ताड़ भर ऊपर उछलने लगे । राहों पर जाती सवारियाँ कई बार लड़खड़ायीं ।

जीरुआ ने डंके पर तीसरी बार और भी घनी चोट की । चारो ओर महाप्रलय के बाद का सन्नाटा फैल गया, लेकिन इस बार नौ सौ चटसारिनें नहीं आयीं ।

जीरुआ-पचुआ ने एक दूसरे को विचित्र आँखों से देखा और दोनों झटके से दूसरे कक्ष में प्रवेश कर गयीं । जब बाहर निकलीं तो दोनों के हाथों में तेज धार के चमचमाते काते लटके थे ।

दोनों की आँखें लाल हो रही थीं । दोनों की आँखों में आँसू थे । दोनों के ओठ फड़फड़ा रहे थे और दोनों की धड़कनें पहले से भी तेज हो गयी थीं, जो उनके वक्ष पर उठते-गिरते आभूषणों से स्पष्ट ज्ञात होती थीं । धड़कनों की तरह ही धड़धड़ करतीं दोनों दालान से नीचे उतरीं और दुरखम खाती दक्षिण दिशा की ओर बढ़ गयीं ।

३०

''दुलरी, इतनी सुबह बाँस-वन में बाँस कौन काट रहा होगा ? कान लगा कर सुनो, खट-खट की ध्वनि साफ-साफ सुनाई पड़ रही है ?'' दुलरी के पति कर्पूर ने भय के स्वर में कहा, ''कुछ ही देर पहले तो जीरुआ-पचुआ का डिग्गा बजा है, मतलब कि आधे दिवस तक कोई न निकले, ताकि बेरोक-टोक दोनों बहन किसी भी दिशा में, किसी भी क्षण आ-जा सके । तब फिर बाँस-वन में बाँस को कौन काट रहा है ? कहीं दोनों बहनें ही तो नहीं ?'' और इसका विचार करते ही कर्पूर सर से पाँव तक, ठोकर खाये थाली में जल की तरह, काँप गया ।

''क्यों क्या हुआ ? तुम इस तरह काँप क्यों गये ? ये जिरुआ-पचुआ कौन है ?'' दुलरी ने अपने भय को छुपाते हुए पूछा ।

''तुम नहीं समझोगी दुलरी । पाँच दिन भी तो नहीं बीते हैं—तुम्हारे गौने के । सारी बातें जानोगी, धीरे-धीरे । अभी तो बस इतना ही जानो कि जो बाँस हरहरा कर गिरे हैं और उन्हें जिरुआ-पचुआ ने ही काटा है तो समझो हमदोनों पर विपत्ति आने ही वाली है ।''

''वह कैसे ?'' भय में दुलरी की आँखें फैल-सी गयीं ।

''पटक जायेंगी बाँस आँगन में और कहेंगी—शाम होते-होते काम पूरा होना है ।''

''क्यों, वे किसी और के यहाँ बाँस नहीं रखतीं ? अपनी जाति के सात सौ घर तो हैं ।''

''लेकिन सबसे पहला तो मेरा ही घर है, बस इसीसे । मेरी बात मानो दुलरी, चुपचाप गहरी नींद में फिर सो जाओ । लाख किबाड़ खटखटाए, लाख झिंझिर बजाए, द्वार नहीं खोलना है ।''

''लेकिन इसमें डरने की क्या बात है ! तुम काम नहीं करना चाहो तो मैं करूँगी । काम की कीमत तो मिलेगी ही न ? अब सोचो, काम नहीं करेंगे तो

पैसे कहाँ से आयेंगे ! पैसे नहीं आयेंगे तो घर कैसे चलेगा ? सोये रहने से पेट तो नहीं सो जाता है ।'' मुस्कराते हुए दुलरी ने कहा ।

''पेट को सुलाने के लिए अगर हमेशा के लिए तू अपने को सुलाना चाहती है तो, जिरुआ-पचुआ का काम गछ । लेकिन जान लो, अगर तुम राँड़ हो कर मरना चाहती हो तो, मैं भी रँडुआ होकर ही मरना चाहूँगा, हाँ । तुम मेरा मुँह मत खराब करवा ।'' कर्पूर के चेहरे पर गुस्सा उतर आया था ।

''अरे, इसमें इतना नाराज क्यों हो रहे हो मेरे स्वामी । सुनो, अगर दोनों आ ही जाती हैं, तो घबड़ाने की कोई बात नहीं । द्वार मैं ही खोलूँगी । वैसे भी गाहक को द्वार से लौटाना मुर्खता नहीं तो और क्या है ? खुश हो जायेंगी तो, दो लाल से कम नहीं देंगी ।''

''और खुश नहीं हुई तो, हम दोनों की मृत्यु निश्चित समझो ।''

अभी दुलरी कुछ और कह पाती कि बाहर से एक स्त्री-स्वर सरसराता हुआ अन्दर आया, ''कर्पूरा, द्वार खोलो, हम जीरुआ-पचुआ हैं ।''

इसके पहले कि दुलरी उत्तर दे पाती, कर्पूर ने अपने बायें हाथ को उसकी गर्दन पर रखते हुए, बायें से उसके मुँह को कस कर बन्द कर दिया । कुछ भी नहीं बोल पाई वह । छटपटा कर रह गयी ।

बाहर से लगातार पुकारने की आवाज आ रही थी, ''कर्पूरा, सुनकर अनठिया रहे हो । तो सुन लो, आई हुई जीरुआ पचुआ अगर लौट गयी तो, तुम्हारी जान जाकर कभी नहीं लौटेगी, हाँ ।''

सुनते ही कर्पूर काँप गया । उसके दोनों हाथ हठात ही ढीले पड़ गये। दुलरी ने एक बार उसे घूम कर देखा और छिटक कर द्वार पर पहुँची । झटाक से लगा हुआ हुड़का खोल दिया ।

देखा, द्वार के पार तमतमाई हुई दो युवतियाँ खड़ी हैं । दोनों के बाँये हाथों में एक-एक काता और दाँये में चौदह हाथों वाला बाँस का एक-एक चोंगा। आँखों की डोरें लाल-लाल हो रही थीं और गौर वर्ण का मुखमंडल श्याम हो गया था । वस्त्र अस्त-व्यस्त और वस्त्र की तरह ही सजे केश भी बिखरे हुए ।

''बहुत देर कर तुमने द्वार खोला । कर्पूरा की कनियान हो ?'' अपने सामने भयभीत बनी एक नवेली दुल्हन देख कर पचुआ ने क्रोध पर नियंत्रण पाते कहा ।

''हाँ ।'' सहमी हुई दुलरी ने अति संक्षिप्त-सा उत्तर दिया ।

अपना और जिरुआ के हाथ का चोंगा सामने रखते हुए पचुआ ने कहा,

''सुन गे बेटी, जाति के डोमनियाँ

चौदह हाथ खड़ा चंगेरा
चौदह हाथ गोलण्टा छीलबे नी करभैं
कदहू नै भूलवे नै करिहैं गे
दुसरों नक्शा खींचबे नी करिहैं गे
सोल सुन्हौली सोलों कोस रूपली
सोलों कोस बौगरी सोलों सौ कोस केदली
सोलों सौ कोस फुलबाड़ी लगाय कें
मरदें गांजा लगाय कें
छोड़बे तें करलें छै गे
कदहू तोहें भूलबे नै करिहैं
आरो ईनाम देबै करबौ गे ।''

सारी बातें सुन कर भी दुलरी सारी बातें नहीं सुन सकी । दुबारा पूछने का भी साहस नहीं जुटा पायी । जीरुआ-पचुआ ने समझा—दुलरी सब कुछ समझ गयी है, इसीसे पचुआ ने दो लाल निकाले और उसके हाथ में थमाते हुए कहा, ''देख कर्पूरा की कनियैन, चंगेरा किसी भी हाल में अमावश्या के पहले दे देना । तरसों ही अमावश्या है ।''

''हाँ कनियैन, भूलना मत ।'' जीरुआ ने भी एक वाक्य जोड़ा था ।

अपनी बातें कह दोनों बहनें डेढ़िया से लौट गयी थीं । एक अजीब-सी सनसनाहट भर गयी थी दुलरी में, हवाओं में भी । हाथ में लाल को लिए देर तक दुलरी देखती ही रह गयी थी, दक्षिण दिशा की ओर, जिधर दोनों बहनें जा कर सहसा अलोपित हो गयी थीं ।

बिछावन पर पड़े कर्पूर ने अपना कपाल जोर से ठोक लिया ।

३१

''लेकिन दुलरी ऐसा चंगेरा बना भी सकेगी क्या ?''

धनसर की बात सुन कर भगवती ने कहा, ''कहाँ से बना सकेगी बेचारी । उससे जो बातें जीरुआ-पचुआ ने कहीं, उनमें आधे को वह भूल भी चुकी है । फिर जो बातें याद भी हैं, उसके रहस्य से अपरिचित होने के कारण वह ऐसा चंगेरा बना भी नहीं सकती ।''

''तब जीरुआ-पचुआ ने ऐसा किया ही क्यों ?''

''यही तो स्त्रियों की मुसीबतों का मुख्य कारण है । कि दुखी नारियों को उत्पीड़ित करने में नारियाँ भी शामिल हैं, ऐसे में एक क्या, करोड़ों-करोड़, अरबों स्त्रियाँ दुलरी की तरह अनाथ, दुखी, उत्पीड़ित दिख जाएं, तो आश्चर्य नहीं।''

''ठीक कहती हो दीदी, दुनिया भर की स्त्रियाँ, स्त्री के पक्ष में, हित में लड़े न लड़े, अगर उसके विरोध में कुत्सित कार्य न करे, तो भी धरती पर अभागिनों का आधा दुख दूर हो जाए । लेकिन दुख तो यही है कि लड़कियों को बाप से अधिक माँ ही पीटती है, पति से अधिक सास ही उत्पीड़ित करती है.... दुखी व्यक्ति अपनी जात, अपने धर्म के लोगों को ही पीड़ा सुनाने जाता है, और जब तक स्त्रियाँ, स्त्रियों को सुनने, सहारा देने की जगह, उन्हें अपमानित, प्रताड़ित करने की कोशिश करती रहेंगी, तब तक धरती पर उसका न तो दुख कम होगा, और न धरती स्वर्ग ही बनेगी ।''

''लेकिन पचुआ ने दुलरी को दो लाल दिए हैं, योगिनी ने तो यही खबर दी है । इससे बेचारी का दुख कम ही हुआ होगा ।'' फुलसर ने कहा ।

''तुम्हारा सोचना गलत नहीं है । लेकिन स्त्रियों को अर्थ से अधिक सहानुभूति और सहयोग की आवश्यकता है । यह ठीक ही है कि धन की प्राप्ति से पुरुष द्वारा निर्मित दास-प्रथा से वह मुक्त हो सकेगी, जिसको स्त्रियाँ भी आज से नहीं, हजारों वर्ष पूर्व से समझती हैं, नहीं समझतीं तो कर्पूर के विरोध के बाद भी दुलरी बेटी ने काम को गछ कैसे लिया, गछ लिया तो इसके मूल में पराधीन से मुक्ति की चाह ही है, लेकिन उसकी ऐसी चाह कितनी देर ठहरेगी, अगर उसे सहानुभूति और सहयोग नहीं मिले....तुमने सुना ही, जो योगिनी सुना रही थी—एक तो दुलरी ने जो किया, उसका कर्पूर किस तरह विरोध कर रहा था, फिर उसकी आँखें उन दोनों लाल पर भी गड़ी थीं । स्त्रियों को उसके श्रम के पारिश्रमिक पर भी अधिकार नहीं है । दूसरे अपने साहस के लिए भी पति से अपमानित हो रही है, उस तरह स्त्रियाँ बाहर से तो प्रताड़ित हैं ही, घर से भी उतनी ही । जीरुआ-पचुआ से कम नहीं है उसका घरवाला । तभी मैं कहती हूँ कि स्त्री को जितने सहयोग की आवश्यकता है, उससे अधिक सहानुभूति की भी। तब धरती पर वास्तविक स्वर्ग बसेगा फुलसर । और हम लोग धरती पर हैं किसलिए? इसी के लिए तो । फुलसर, यह जान लो, नारियों का दुख बतकही या मुँहचोथव्वल से दूर नहीं होने वाला, उसे करके दिखाने से होगा । समझती हूँ, तुम समझ रही होगी कि मैंने यह चंगेरा बनाने का निर्णय क्यों ले लिया ।''

अब तक चोंगा से निकाली गयी पत्तियाँ जमीन पर बिछ गयी थीं । पाँचो भगवती ने पत्तियाँ समेट कर इकट्ठा कीं तो, भगवती ने काती के सहारे उन्हें गूँथना शुरु किया ।

जैसे चावल के कणों को भूखी चिड़िया चोच से टपटप उठाती और कंठ के नीचे कर फिर कण पर झुक जाती है, भगवती की अंगुलियाँ कुछ उसी तरह बाँस की पत्तियों को उठातीं और चंगेरे में गूंथ देतीं । ज्यों-ज्यों पहर ऊपर उठ रहा था, त्यों-त्यों चंगेरा भी ऊपर उठने लगा था । भगवती ने हाथ से गहराई नापी—सात हाथ गहरा । फिर गोलाई के एक सिरे से हाथ को आगे बढ़ाने लगी और जब घूम कर हाथ वहीं पर पहुँचा तो, पूरे पूरी चौदह हाथों की गोलाई थी ।

भगवती के चेहरे पर अगाध सन्तोष का भाव झलक आया । कहा, ''अब चंगेरा पूरा होने में कोई शंका नहीं, गहराई तो भुरकवा उतरने के पहले चौदह हाथ तक चढ़ जायेगी । रही चित्र-लेखन की बात, उसे तो मैं देखते-देखते पूरा कर दूँगी । निश्चिन्त रहो ।''

''एक बात पूछूँ दीदी ?'' मदमालती ने कौतुहलता से पूछा ।

''एक नहीं, सौ बात पूछो ।'' भावविभोर भगवती ने अंगुलियों को बिना रोके ही कहा ।

''जीरुआ-पचुआ ने चौदह हाथ की गहराई और इतने ही हाथों की गोलाई.... ।''

''वही तो मैंने भी किया है ।'' भगवती ने चंगेरे के गिरह को फिर से गिनते हुए कहा, ''चौदह हाथ का अर्थ चौदह हाथों से थोड़े ही है, इसका संकेत तो चौदह भुवनों से है । वैसे तो भूलोक, भुवलोक, स्वर्गलोक, महलोक, जनलोक, तमलोक और सत्यलोक, ये सात ही लोक माने गये हैं, लेकिन, अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, और पाताल, इन सात पाताल लोकों को लेकर चौदह लोक बन जाते हैं । जीरुआ-पचुआ की चौदह हाथों वाली बात का रहस्य यही है । और फिर चौदह हाथ गोल गोलण्टा से दोनों बहनों का क्या तात्पर्य है, वह भी जानलो; इसका संकेत सात समुद्र और सात वायुलोक से है.....ये चौदह लोक—क्षारोद, रसोद, सुरोद, घृत, दधि, दुग्ध और स्वाद के समुद्र; तथा प्रवह, आवह, उदवह, संवह, विवह, परिवह, और परावह—इन सात वायु की करधनी से घिरे हुए हैं । अब तो तुम चौदह हाथ की गोलाई का अर्थ समझ गयी होगी । और मैंने दो गज गहरा इसीलिए बनाया है कि सोलह गिरह का एक गज होता है, इसी से मैंने इसमें बत्तीस-बत्तीस गिरह डाले हैं । पाटा में भी और कामदर में भी ।''

मदमालती, शीतला, फुलसर, धनेसर, गहेली की आँखें आश्चर्य से फैल

गयीं ।

''हो गयी न आश्चर्यचकित । और यह जानकर तो तुम सब और भी आश्चर्यचकित हो जाओगी कि जीरुआ-पचुआ ने इन इक्कीस लोकों, सात समुद्र का उल्लेख क्यों किया ? इसलिए कि सलेस का यश उन लोकों में भी फैलने लगा है । सलेस को वश में करने के लिए उन सभी लोकों के देवताओं को भी प्रसन्न करना जरूरी है । देवताओं को पक्ष में कर लेने से तो कुछ भी असंभव नहीं ।'' भगवती ने पाट की बन्हौनी करते हुए कहा ।

''और इसमें जीरुआ-पचुआ की मदद कर हमलोग प्रकारान्तर से अकर्म की सहायता ही नहीं करेंगे क्या ?'' धनेसर ने शंका जताई ।

''तुम्हारा ऐसा सोचना अस्वाभाविक भी नहीं है । लेकिन, जीरुआ-पचुआ को सत मार्ग पर लाने का यह भी एक मार्ग है । कि उसने अपने किए कर्म से ही आत्मज्ञान हो और ऐसा जब होगा, तब वह समाज के सतमार्ग से विचलित भी नहीं होगी । किसी व्यक्ति को, किसी व्यक्ति का नीति-संदेश प्रायः व्यर्थ और झूठ ही प्रतीतता है । तुम यह भी समझती होगी कि मैंने सलेस को मोरंग तक पहुँचा कर व्यर्थ ही इसके प्राणों को संकट में डाल दिया है, यह अपकर्म है; लेकिन इसके नेपथ्य में जो भाव रोमांचित हो रहा है, उसे मैं कैसे दिखाऊँ । इस कृत्य में न केवल मोरंग का भाग्य छिपा हुआ है, बल्कि सलेस का भी । तुम्हें नहीं मालूम कि सलेस जब भी साधना में होता है, तब-तब उसके ध्यान में लौंगा और जीरुआ-पचुआ की छवियाँ उभर कर उसे विचलित करती रहती हैं, ऐसे में उसका चित्त ध्यान में स्थिर कैसे रह सकता है ! सलेस के चित्त की स्थिरता तभी लगेगी, जब लौंगा और जीरुआ-पचुआ के चित्त की चंचलता शांत होगी । इतना सारा प्रयोजन इसी के लिए तो है ।.....और तुम क्या समझती हो धनसर, कि पूर्ण सिद्धि बिना तप के ताप को सहे मिलती है ? सलेस अपवाद नहीं है ।.....और फिर मंगल का एक कार्य आरम्भ करो तो उससे सौ मंगल सिद्ध हो जाते हैं । यह तो तुम बाद में देखोगी, समझोगी ।'' भगवती ने पाटा पर अन्तिम बान्हन लगाया और कोतरी को एक ओर रख दिया । उसे चारो ओर से घुमा-फिरा कर देखा, फिर हाथों से उछाल कर भी ।

''एकदम मजबूत बना है, हाथी भी चढ़ जाय तो लचक भले जाय, लेकिन टूटे नहीं, ऐसा ही ।'' भगवती ने संतोष की एक गहरी साँस ली और उसी तीव्रता में छोड़ते हुए कहा, ''अब बस, इसमें बताये हुए चित्रों को उकेरना है । वह भी देखते-देखते ही हो जायेगा । तूलिका तैयार करो और रंग भी ।''

''मालत दी ने तो पहले से ही रंग बना कर रखा है, तूलिका भी ।''

गहेली ने कहा ।

''तो विलम्ब क्यों ? इधर लाओ ।''

लम्बी, पतली बेतों में आगे में लिपटी रूई, यही थीं तुलिकाएँ और तीन स्वर्ण पात्रों में तीन रंग—पीला, हरा और लाल ।

भगवती ने चंगेरे को सरकाते हुए उसके एक सिरे को अपने मुड़े बाँये घुटने पर रखा और उसके अंदर रंगों की रेखाएँ उभारना शुरु की तो, फुलसर, धनसर, मदमालती, शीतला, गहेली, सब की सब भगवती के पीछे हो गयीं और घुटने को, खड़ी एड़ियों पर बैठे, उचक-उचक कर रंगों की रेखाएँ देखने लगीं ।

''दीदी, यह जो केन्द्र में तुमने वर्ग बनाया, यह किसका प्रतीक है ?'' फुलसर ने कहा ।

''अरे, यही तो है, सोने, चाँदी से मड़ी सोलह कोस की बौगरी । चम्पा का एक नाम, अंगप्रदेश की राजधानी । बौगरी कहो, या बौगरीपुर या बौगलीपुर. .....माँटी और बालू की तरह यहाँ कभी सोना और चाँदी बिछे रहते थे.....और यह बना सोलह कोसों का केदली वन,'' भगवती ने दूसरी कूची उठा कर, हरे रंग से कई छोटी-छोटी रेखाएँ चंगेरे की भीतरी दीवाल पर उभारते हुए कहा, ''बौगरी के उत्तर, गंगा के किनारे-किनारे...सिद्धि वन यही है; महातांत्रिक के सिवा इसमें कोई प्रवेश नहीं कर सकता, इसीसे यह विजन वन भी कहाता है, जिसे सब छोटा कर वीजूवन कहते हैं.....दिन में भी घोर अन्धकार से छाया हुआ वन.....रात के समय सिद्धियों की बिजलियाँ भी कभी-कभी चमकती हैं, इसीसे से लोक में यह बिजली वन, बिहुली वन के नाम से भी मान्य है ।''

''क्या यही सोलह कोस की फुलवारी भी है ?'' गहेली ने उत्सुकता में पूछा ।

''नही, सोलह कोस की फुलवारी तो अब बनेगी । लत्ता तो लपेटना'' भगवती ने शीतला की ओर कूची को बढ़ाते हुए कहा, ''सोलह कोस की फुलवारी तो वह फुलवारी है, जिसे बौगरी के एक चक्रवर्ती राजा ने अपने नाम से लगाया था ।''

''दीदी, तुम चम्पा फूलों की ओर तो संकेत नहीं कर रही हो ?''

''तुमने ठीक ही समझा । जैसे अंगधात्री चम्पा की कुलदेवी है, उसी तरह चम्पा के फूल—अंग देश का राजपुष्प । चम्पा फूल के वे वृक्ष राजधानी से लेकर कोशी के पूरे क्षेत्र को घेरते हैं, इसी कारण चम्पा का उत्तरी भाग भी चम्पारण्य ही कहाता है ।'' भगवती ने नये लत्ते की कूची को शीतला से लेते हुए कहा, ''देखो, यही है सोलह कोसों की फुलवारी ।'' और वह स्वर्णपात्र में रखी

पिठाली से हाथ-भर की रेखाएं चंगेरे के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक खीचती चली गयी, जो दूर से वर्ग के बीचोबीच गुजरती हुई एक मोटी रेखा थी । फिर प्रत्येक रेखा के सिरे पर घड़े के आकार का एक लघु वृत ।

''लेकिन अब तो जगह ही नहीं बची । सोलह कोस में गांजा कैसे लगेगा ?'' मालती की आँखें और मुँह गोल हो गये, जैसे कोई बहुत बड़ी गलती हो गयी हो ।

''गाँजे की बात ही कहाँ है इसमें ।'' भगवती ने मालती को देखते हुए कहा, ''जीरुआ ने तो यही कहा कि चम्पा और केदली वन लगाने वाले ने गांजा लगाने की जगह ही नहीं छोड़ी....इसी का तो दोनों बहनों को दुःख है ।''

''क्यों ?''

''क्योंकि जिस मुलुक में इसकी फुलवारी होती है और जिसके लोग इसके व्यसनी, उन्हें उस मुलुक के अनीति और अप्रीतिकर भोग से अरुचि नहीं होती और उन्हें किसी भी प्रकार के प्रलोभन का शिकार बनाया जा सकता है । ऐसे व्यसनी देश के लोग अपने लोगों को भी शांत नहीं रहने देते हैं, दूसरों को कहाँ रहने देंगे । फिर जहाँ के लोग व्यसनी होंगे, उस देश का मान क्या सुरक्षित रहेगा । चम्पा आज भी अपने मान-प्रतिष्ठा में स्थिर है, इसीलिए कि यहाँ के चक्रवर्त्तियों में एक भी उदाहरण नहीं मिलेगा, जो व्यसनी हुए । यह देश तो तपस्वियों-कर्मवीरों का पावन क्षेत्र रहा है ।.....जीरुआ को दुख भी तो इसीलिए है कि इसके किसी मर्द ने इसे व्यसन की भूमि नहीं बनाई ।''

भगवती ने चंगेरी की भीतरी दीवार पर पिठाली का अन्तिम कार्य भी पूरा किया और त्वरित गति से चंगेरे के बाहरी भाग पर वैसी ही रेखाएँ और रेखाओं में रंग उतारने लगी थी । देखते-ही-देखते चंगेरा अन्दर और बाहर से एक-सा हो गया । रंगो और रेखाओं से आकल्पित चंगेरा—धरती पर उतरा हुआ जैसे स्वर्ग का कोई सनपिटारा ।

सबकी आँखें चमत्कृत थीं और भगवती की आँखों में गहरे सुख का भाव । उसने आकाश को देखा । तिनडेरिया डूबने में पहर भर की देरी अवश्य होगी ।

''एकदम ठीक समय पर काम पूरा हुआ है ।'' सन्तोष से भीगे स्वर में भगवती ने कहा और फिर शाकिनी की ओर मुड़ती हुई बोली, ''क्षण भर का भी विलम्ब अनुचित होगा । विद्युत वेग से चलने वाले जिस अश्व को हाँकती आई हो, उसी से लौट जाओ । तुम्हारे सिवा उसे हाँक भी कौन सकता है । तिनडेरिया मद्धिम पड़े, इसके पूर्व ही तुम्हें मोरंग पहुँच जाना है ।''

''हुआ तो, भोर उतरने के पहले मैं यहाँ उतर आऊँगी ।'' शाकिनी ने सर नवाया था और चंगेरे को पीठ पर चुनरी की तरह बांध लिया था ।

''दुलरी तो एकदम रतजगा कर रही होगी । भय के मारे उसे नींद कहाँ आती होगी । झिंझिर खटखटाओगी भी नहीं कि वह हुड़का खोल देगी, और हाँ, एक तो दुख के कारण वह कुछ पूछेगी नहीं, अगर पूछ-ताछ करेगी ही तो, कहना कि उसने जीरुआ-पचुआ की बातें सुन ली थीं । ठीक है !'' भगवती ने शाकिनी को फिर समझाते हुए कहा था, ''तुम्हारे लौटने तक हमलोग चौपड़ ही खेलती रहेंगी ।''

अभी चौपड़ बिछा भी नहीं था कि विस्तृत वन की नीरवता और रात्रि की निस्तब्धता में घोड़े के टापों की ध्वनि झंकृत हो उठी, जैसे द्रुत ताल में तबले पर दक्ष काल की अंगुलियाँ कंपित हों ।

३२

राजमाता ने जैसे ही सामरी के कक्ष में प्रवेश किया तो, सामरी की आँखें छलकती गगरी-सी हो गयीं । किसी तरह भी अपने आँसू और कपसने पर वह नियंत्रण नहीं रख सकी ।

राजमाता ने उसके सर पर हाथ रखा । और इस तरह से असामान्य होने का कारण पूछा तो बड़ी मुश्किल से अपने ऊपर नियंत्रण पाती हुई सामरी ने कहा, ''माँ, कई दिनों से अपशकुन का स्वप्न बार-बार नींद में चला आता है—संझवाती पर टूटा तारा गिरा है और मैं उसी में झुलस रही हूँ ।''

सुनते ही राजमाता की आँखें भी छलक आयीं । किसी विकट अनिष्ट की आशंका से उसका सारा शरीर सिहर उठा । लेकिन, जैसे राजधर्म के निवाह के लिए ही, उसने सिसकती सामरी के सर को अपने कंधे पर रख कर, उसकी पीठ को सहलाते हुए कहा, ''बहू, मेरे होते किसी अनिष्ट की कल्पना भी व्यर्थ है, अनिष्ट होने की तो बात दूर ।''

कहने के लिए तो कह गई, लेकिन इससे उसके मन की चिन्ताएं नहीं हटी थीं और न उसकी आँखों में छाया हुआ भय कम हुआ था ।

''तुम चिन्ता न करो'' सामरी के माथे पर हाथ फिराते हुए राजमाता ने फिर कहा था, ''अब तुम्हारे मन में कुछ शंकाएँ ही हैं तो उसका भी निवारण होगा । कल ही मोतीराम को मैनमा के साथ चम्पा भेजती हूँ, जायेगा तो अघोरघाट होते

हुए ही । एक नहीं, कई तांत्रिकों, पुरोहितों की सभा बुलवाती हूँ, और कल ही । शाम होने से पहले घोड़े, हाथी और रथ की सवारियाँ निकल पड़ेंगी । कालीकंठ को भी सूचना भिजवाती हूँ.....तुम धैर्य धारण करो ! वैसे भी अनिष्ट की आशंका किसी अनिष्ट से कहीं अधिक भयावह और विनासकारी होती है । अनेक अमंगलकारी चिन्ताओं की वह जननी है, जो मन के सुख और शांति के रक्त को पीकर जीती है.....मैं तुम्हारे मन-बहलाव के लिए और भी ग्राम-वधुओं के प्रवेश की व्यवस्था देती हूँ । कभी-कभी एकान्त भी भयावह दुःस्वप्न बन कर मनुष्य को प्रताड़ित करता है ।'' इतना कह राजमाता सामरी को उसके कक्ष में ही छोड़ कर मोतीराम को संदेश देने, आँगन की ओर बढ़ गयी ।

जैसे मोतीराम माँ के निकलने की प्रतीक्षा में ही खड़ा था ।

राजमाता ने उसे साथ लिया और अपने कक्ष तक पहुँचते-पहुँचते उसे सारी बातें बतायीं । फिर यह भी कहा कि ''मैं तांत्रिकों और पुरोहितों की एक सभा भी चाहती हूँ—किसी भी अनिष्ट की आशंका जितनी शीघ्रता से समाप्त हो सके, वही श्रेष्ठतम ।''

मोतीराम ने माँ के चरण छूये थे और एक ओर शीघ्रता से बढ़ गया था ।

३३

वह रात अजीब भयावह शांति में बीती । शायद यही कारण था कि जब भोर का उजास क्षितिज पर दिखाई पड़ा तो, कुछ वैसी ही दीप्ति राजमाता के चेहरे पर भी तैर गयी ।

मन-ही-मन में अवधि का अनुमान लगाते हुए कहा, ''अब तो मोतीराम, कालीकंठ और छेछन चम्पा से लौट भी रहा होगा । बाँस-दो-बाँस, सूर्य के आकाश में चढ़ते न चढ़ते तीनों यहाँ उतर आयेंगे । और लौटेगा तो निदान के अक्षयकोष के साथ ही ।''

सोचते ही राजमाता के चेहरे पर भोर के उजास में पूर्णिमा की चाँदनी विहँस पड़ी ।

सूर्य आकाश पर कुछ और ऊपर चढ़ आया । राजमाता रात के तीसरे पहर से ही आँगन की देहरी पर खड़ी थी । सूर्य लगभग बाँस भर ऊपर चढ़ आया था । कि तभी घोड़े के टापों और रथ के चक्कों की आवाज दिशाओं को गुंजाने लगी । वह मुख्य द्वार पर आ खड़ी हुई ।

कुछ ही देर के बाद मोतीराम राजमाता के सामने उपस्थित था ।

''क्या समाचार लाए हो पुत्र ?''

''आपके आदेशानुसार कालीकंठ अघोरघाट, मैनमा जहाँगिराघाट और भैरवा घाट गया था ।''

''तांत्रिकों से भेंट हुई ?'' राजमाता की आँखों में गहरी व्यग्रता थी ।

''हुई । हमलोगों ने आप की शंकाएँ भी सामने रखीं ।''

''तब फिर ?''

''उन लोगों का बस यही कहना रहा कि 'ग्रहण लगने से सूर्य पिघल नहीं जाता और न शेष ही हो जाता है ।' राजमाता, मैं स्वयं चम्पा के भैरवा घाट के चम्पनाथ, चन्दननाथ और चम्पकनाथ से मिला था । उन्होंने भी बस यही कहा।''

''तो तुमलोगों ने उन सबों से यहाँ आने का अनुरोध नहीं किया ?''

''किया था, मैंने ही नहीं, कालीकंठ और मैनमा ने भी । उनलोगों ने बस यही कहा—गहरे अन्धकार में ही मशान की रोशनी शोभती है ।''

''तात्पर्य ?''

''वह तो मैं भी नहीं बता सकता । लेकिन कुछ-कुछ जो स्पष्ट होता है, वह यह कि अभी उन लोगों का यहाँ आना आवश्यक नहीं है ।''

''हाँ, यहीं कहना चाहते होंगे । तो क्या तुम लोगों ने सलेस के संबंध में उनसे जानने की कुछ कोशिश नहीं की ?''

''मैंने की थी । सबों ने बस यही कहा—मायाजाल । मायाजाल !..... अन्धकार में ही मशान की रोशनी शोभती है और फिर मायाजाल ! मायाजाल'' मोतीराम ने दोनों भुजाओं को उठाते हुए, कलाइयों को झटकाते हुए कहा था ।

''मोती, भले ही कोई अनिष्ट की आशंका न हो, हमें तो किसी भी अनिष्ट के विरोध में प्रचण्ड बल की तरह ही सावधान रहना होगा । यही शंकाकुल मनुष्य का कर्त्तव्य है, और राजधर्म भी । अभी राज के साथ-साथ बहू और सलेस की सुरक्षा, एक साथ अनिवार्य हो गयी है ।''

३४

''अदभुत ! अभूतपूर्व ! आज तक इतना खूबसूरत चंगेरा मैंने देखा ही नहीं ! दुलरी तुम्हारी अंगुलियाँ हैं या जादू की छड़ियाँ ?'' पचुआ कभी चंगेरे की ओर देखती तो कभी दुलरी की ओर ।

''लगता ही नहीं कि तुमने इसे बनाया है, बस यही लगता है कि तुम स्वर्ग से इसे चुरा कर ले आई हो ।'' विष्मयविमुग्ध जीरुआ ने दोनों हाथों से चंगेरे

को उठाते हुए कहा । उसकी आँखें खंजन पक्षी की तरह चंगेरे के रंगों और रेखाओं पर दौड़ रही थीं और फिर उसे नीचे रखते हुए कहा, ''ये लो, दो की जगह तीन लाल । यह भी शायद कम ही पड़े क्योंकि श्रम की चाहे जितनी भी कोई कीमत लगाए, कम ही होगी । इसकी कीमत तो देवता भी नहीं दे सकते, फिर मैं क्या ! लेकिन रख लो ।''

दुलरी तो जैसे खुशी से फूल बन कर रह गयी थी, इतने-इतने लाल को अपने हाथ में पाकर । प्रणाम कर घर की ओर मुड़ी, तब भी उसे ऐसा ही लग रहा था, जैसे उसका शरीर रूई-सा हल्का हो गया है और वह हवा में इधर-उधर उड़ चली है ।

''जीरुआ, अब बैठे रहने का समय नहीं है । चंगेरे को सजाने का समय है, खुद सजने का भी समय है । आज की इस अमावश्या में हमारे भाग्य का निर्णय होना है ।'' पचुआ के ओठों और आँखों में एक अजीब-सी मुस्कान फैल गयी ।

और जीरुआ के भी ।

''निर्णय तो निर्णीत है, और हासिल में क्या आशंका ।'' जीरुआ ने आलोकित आँखों से कहा ।

''ठीक ही कहा तुमने । चलो, सोलह सौ कोठियों में जो जादू भरा है, आज उसे खोल दें ।'' पचुआ ने अपने दोनों हाथों को ऊपर की ओर उछालते हुए कहा ।

''और सखुआ के खूटों से जो सौ-सौ देवता बंधे हैं, उन्हें भी खोल दें ।'' पचुआ ने भी वैसी ही खुशी में अपने हाथों को उछालते कहा था; जैसे उनदोनों के ही हाथों में कोई जादू हो ।

देखते-ही-देखते चेतना को शिथिल करने वाली सुगन्ध की तिरछी नुकीली लहरें हवाओं पर तैरने लगीं । उजगी की मारी स्त्री की तरह दिन की आँखें उनींदी होने लगीं । लगा, सुगन्धों के देवता मुक्त होकर हवाओं में गतिमान हो गये हैं ।

शाम से ही सजने बैठ गयी थी जीरुआ-पचुआ । स्वर्णमंडित शीशे में दोनों ने अपने-अपने रूप को निहारा तो, आँखें असीम विष्मय से फैल गयीं । ऐसा भी सौन्दर्य होता है किसी का ! दोनों ने अपनी सम, अनुवृत, आलोकित, प्रलोकित और अवलोकित दृष्टि से स्वयं को दर्पण में देखा था ।

सिर पर जोड़ा खोपा । खोपा में एक काँटी पनमा, दू काँटी छोटका, और लोर मछरिया ।

आधे बदन पर चम्पापुर की रेशमी साड़ी । बाँक-बूटा चोली । गले में

शोभती हौंसली, हैकल से लेकर चोली पर लटकते चन्द्रहार, चम्पाकली और मटरमाला । कानों में कनौसी, कर्णफूल और झुमका । बाजू में जौसन, बिजौठा । हाथों में सोलतिया अड़तालीस भर सोने के कंगन, उस पर पौंची और पिछुआ । पैरों में गोड़-गोड़ासी, काड़ा-छाड़ा, बिछिया, बोलता नुपुर । दोनों की आँखें ही नहीं हट रही थीं दर्पण से । जाने कितनी देर तक देखती ही रह गयीं थीं स्वयं को ।

ऐसा अपूर्व रूप स्वर्ग की अप्सराओं को भी शायद ही प्राप्त हो—मन में यह भाव उठते ही उनकी दृष्टि दर्पण पर एकदम स्थिर हो गयीं, अपनी ही रूप-छवि को देखने में सम-शांत ।

''जीरू, अब हमें दुधिया सरोवर की ओर चल पड़ना चाहिए ।'' पचुआ ने गर्वित स्वर में कहा ।

''बिल्कुल ठीक कह रही हो, मध्य रात्रि के आगमन में अब समय ही कितना शेष है । लेकिन शृंगार में कुछ कमी रह गयी है, उसे भी तो पूरा कर लो ।'' जीरुआ ने दर्पण पर ही दृष्टि गड़ाए कहा ।

''वह क्या ?'' पचुआ ने भी जीरुआ को बिना देखे पूछा ।

''माँग में सिन्दूर सजाना बाकी रह गया है ।''

''वह अभी से क्यों ?''

''तुम जानती नहीं—गुरुआइन लौंगा अब तक जग रही होगी, देखेगी तो, पूछेगी ही । तब हमलोग यही कहेंगे कि हमारी शादी तो सलेस से हो चुकी है । मेहमानों की भीड़ द्वार पर है, स्वागत के लिए सामान क्रय करने विराटपुर जा रही हूँ । माँग में सिन्दूर देखेगी तो, अविश्वास भी नहीं करेगी और फिर सलेस को हमसे अब कौन छीन सकता है, सिन्दूर पहले पहन लो कि बाद में, क्या फर्क पड़ता है ।'' पचुआ नें होठों में हँसते हुए कहा ।

रात्रि का मध्य पहर उतर गया था । लेकिन रात्रि के उस घने अन्धकार में भी टिमटिमाती लौ का प्रकाश पाकर जीरुआ-पचुआ के आभूषण, सन्नाटे में लहकती आग की तरह दीप्त थे जिससे अमावश्या के गहरे अन्धकार को अपना अस्तित्व बचाए रखने में ही कठिनाई हो रही थी ।

प्रस्थान से पूर्व जीरुआ ने पाँच-पाँच पलों के अन्तराल से डंके पर चोट से निनाद किया, ताकि जगे नभचर, जलचर, थलचर फिर अपने-अपने आश्रय में निद्रालस हो उठे । राह में दूर-दूर तक किसी की छाया की आकृति भी न उठे ।

''इस मध्य रात्रि में डंके पर चोट, कहीं जीरुआ-पचुआ सलेस पर संकट उतारने के लिए तो तैयार नहीं हुई है ।'' सोचते ही लौंगा मालिन की निद्रालस आँखें सजग हो उठीं । मन में शंकाओं का बवंडर उठ खड़ा हुआ, ''कहीं परिणय

की कामना के वशीभूत तो नहीं हो उठी हैं ? किसी सिद्धि के लिए तो सलेस को शिकार नहीं बनाना चाहतीं—इस महायामिनी में ? यह, दोनों के आभूषण की चमक ही है या मुक्त देवताओं का मायालोक—सलेस को मायाबद्ध करने के लिए ?''

संदेहों पर संदेह की दीवारें खड़ी होती गयीं, इतनी ऊँची कि कुछ भी देख पाना, सोच पाना असंभव हो गया ।

''अब एक ही मार्ग है कि रहस्य को दोनों बहनों से ही जान लिया जाए'' लौंगा बुदबुदाई और आँखों को पलकों से ढक लिया ।

बंद आँखों में जीरुआ-पचुआ के रूप की छवि प्रकट हो उठी । दोनों के हृदय के भाव भी ।

क्षण पर क्षण गुजरने लगा, एक, दो, दस, सौ, छः सौ, छः हजार । लौंगा का हृदय सत्तर बार धड़क चुका था। वह धड़कनों से काल की गति और अवधि को बंद आँखों से नाप रही थी । समय-प्रवाह में क्षण जलबूंदों की तरह गिरते बह जाते थे । लौंगा ने अपने हृदय पर सात सौ से अधिक बार स्पन्दन की गति अनुभव की—सात हजार, आठ हजार, दस हजार, बीस हजार, चालीस हजार, साठ हजार ।

और जब आँखें खुलीं तो, जीरुआ-पचुआ बन्दिनी की तरह सामने खड़ी थी ।

''तो तुम्हारे ये सारे आयोजन सलेस को बांधने के प्रयोजन से हैं ?'' लौंगा की आँखों में कठोरता का भाव चमक उठा था ।

''बाँधने का नहीं, सलेस तो पहले ही बंध चुका है'' जीरुआ ने मुस्कराते हुए कहा, ''सलेस से परिणय-संबंध में तो हमदोनों रात को ही बंध चुके हैं, आचार्या, हमारी माँग का यह सिन्दूर क्या उसका प्रमाण नहीं देता ?''

''नहीं, अभी तुम दोनों जिस आंगिक भाव में डूबी हुई हो, वहाँ परकीया से लेकर स्वकीया तक का शृंगार, कुछ भी संभव है । तुम्हारा यह सिन्दूर झूठ है। तुम्हारे भाव अशुद्ध हैं । तुम्हारे आचरण, आभूषण, आंगिक व्यवहार, सब ही तुम दोनों की दिकभ्रमिता के प्रमाण हैं ।'' लौंगा की आँखें कुछ और तन गयीं ।

''और आचार्या को जब सारी बातें मालूम ही हैं तो, फिर हमें यहाँ तक खींच लाने की जरूरत ही क्या थी । हमने तो स्वयं दूसरे मार्ग से निकल जाने का मन बना लिया था ।'' पचुआ की मुस्कराहट अचानक लुप्त हो गयी थी ।

''ताकि आचार्या होने के नाते, मैं तुम दोनों को दिकभ्रमित होने से बचा सकूँ ।''

'आभार ! लेकिन शायद इस समय हमें आचार्या की इस सहानुभूति की

कोई आवश्यकता नहीं है ।'' पचुआ ने ही कहा ।

''यह तुम नहीं बोल रही हो, यह तुम्हारा पाप बोल रहा है ।'' लौंगा का क्रोध पुन जग-सा गया था ।

''अगर मैं यह कहूँ कि यह आचार्या नहीं, आचार्या का उपेक्षित और असमय में प्रबल हो गया लोभ बोल रहा है, तो क्या झूठ होगा ।'' तिरछी आँखों से जिरुआ ने लौंगा मालिन को देखते हुए कहा था ।

काँच की एक बहुत खड़ी ऊँची हवेली हठात ही आँधी से बिखर कर शोर पैदा करती गयी हो, ऐसी ही अनुभूति लौंगा को हुई । उसे लगा, जैसे कोई उसका ही पोसा हुआ प्रेत उसके शरीर का सारा रक्त निचोड़ गया हो, और माँस-मज्जा सूखे कीचड़-सा अलग हो गया हो ।

जीरुआ-पचुआ ने देखा—उसका तीर लक्ष्य भेद कर गया है, तो छूटते ही जीरुआ ने पचुआ की ओर देखते हुए कहा, ''और क्या तुम यह नहीं जानती हो कि आचार्या की इस स्थिति का कारण भी स्वयं आचार्या ही हैं । पुरुष को पाने के लिए शुद्ध समर्पण और उस पर निर्मल विश्वास की जगह उसे बांधने की जरूरत होती है, और बाँधने के लिए चाहिए—आधा-आधा समर्पण और पूरा-पूरा शृंगार । नहीं तो प्रेम की जगह आखिर में प्रेमिका को मिलेगा हृदय का यही हाहाकार, क्यों पचुआ ?''

''ठीक, बिल्कुल ठीक कहती हो । और यह भी कहाँ है कि हम सलेस के साथ आजीवन साथ रहने की आकांक्षा लेकर उसे प्राप्त करना चाहते हैं । आचार्या से यह भी एक गलती हो गयी, कि उन्होंने इस पुरुष के साथ आजीवन जीने की कामना कर ली, बिना यह समझे कि पुरुष किसी स्त्री के साथ एक-सा भाव बनाकर रह ही नहीं सकता । हम तो उसके साथ आजीवन जी ही नहीं सकते । बस कुछ दिनों के बाद मुक्त हो जाना चाहेंगे, ताकि उसमें हमारे प्रति आसक्ति तो बनी ही रहे ।''

लौंगा मालिन का मन, जो कुछ सालों से बर्फ की तरह सख्त हो गया था, जीरुआ-पचुआ की बातों का ताप पाते ही फिर पिघल-सा उठा । और तरल मन से सोचा, ''दोनों गलत कहाँ से कह रही हैं, सही ही तो बोल रही हैं, मैं तो बस पूर्ण समर्पण और अधिकार भाव से भर उठी, उसीका परिणाम तो यह है कि आज निर्वासन और मृत्यु की कामना से भरी पड़ी हूँ । गलत कुछ भी नहीं कहा है दोनों ने । मैं ही शायद गलत थी कि सोच लिया—नारी चाहे जितनी स्वाधीन हो ले, वह पुरुष के बिना नहीं रह सकती,.....इसीसे सलेस का सहारा भी पकड़ना चाहा था मैंने.... .लेकिन मैं गलत भी तो नहीं थी, जीरुआ-पचुआ के लिए यह भले सही नहीं हो,

पर सौ में नब्बे नारियाँ क्या मेरी ही तरह नहीं सोचती हैं ।''

लौंगा चिन्ताओं में डूब गयी थी । चेहरे पर उठे भावों को छुपाने के विचार से ही उसने अपने सर को दायें हाथ की अंगुलियों पर झुका लिया था और जब सर को उठाया तो जीरुआ-पचुआ वहाँ नहीं थी । दबे पाँव चुपके से दोनों निकल गयी थीं—इतनी क्षिप्रता में कि समय तक को भनक नहीं मिल सकी ।

''कहाँ गयी होंगी दोनों ?'' मन में यह प्रश्न उठते ही लौंगा की सारी इन्द्रियाँ, कोट पर खड़े प्रहरियों की तरह, चैतण्य हो उठीं, ''अवश्य ही दुधिया सरोवर की ओर चली गयी होंगी । आखिर वही तो सलेस कई दिनों से ठहरा हुआ है'' उसके मन ने कहा ।

दुधिया सरोवर का ख्याल आते ही वह सर से पाँव तक सिहर गयी, और बड़बड़ा उठी, ''वह तो जीरुआ-पचुआ का गुप्त महल बन गया है, यह बात या तो दोनों बहनें जानती हैं या फिर मैं क्या सलेस को भी मालूम है, नहीं; तो वहीं पर क्यों ठहरा हुआ है ? अनजाने में भी तो हो सकता है, हो सकता है दुधिया सरोवर से खिंच कर वहाँ ठहर गया हो उसे क्या मालूम कि यह सरोवर तो जीरुआ पचुआ के लिए शिकार का अभ्यारण्य है ।''

सलेस पर आसन्न संकट की कल्पना से लौंगा एकदम व्याकुल-सी हो उठी ।

उसका मन हुआ कि वह उस सरोवर की ओर ही दौड़ पड़े, लेकिन उसके पाँव नहीं हिल सके । हिल ही नहीं सके । इसकी जगह शरीर में एक कम्पन-सा उठा और स्थिर आँखों की पुतलियाँ चारो ओर घूम गयीं । कहीं कुछ नहीं था । लौंगा ने गर्दन को बायाँ-दायाँ किया । कुछ स्थिर हुई और फिर सहसा ही उसकी भृकुटियाँ तन गयीं, ओठ और ठुड्डी काँपे । उसका पहचाना हुआ क्रोध उसकी शिराओं में चढ़ने लगा था । दायें हाथ की अंगुलियाँ गले में रूद्राक्ष की माला को मसलने लगीं । आँखों में कोई धुँधली-सी छाया स्पष्ट होने लगी.....दुधिया सरोवर के नीचे का महल.....महल में तांत्रिकों, अवधूतों के कई-कई कन्दराकार के कक्ष. .....स्त्री साधिकाओं के लिए बिल्कुल अलग.....कि एक दिन महल की सारी शीतलता आग में बदल गयी....कोई तांत्रिक नहीं जानता था उस अवधूत को.... आँखें आवाओं-सी जलती हुयीं । कंधे से पाँव तक लटकता रक्तवर्ण का चीवर... .....गले और बाँहों में रूद्राक्ष की मालाएँ....कपाल पर विभूति और माथे पर खुली हुई जटाएँ.....बहुत उम्र का नहीं था.....तीस से अधिक का भी नहीं रहा होगा.... .रह-रह कर उसका सोंटा और शृंगी बज उठते । सब अभिभूत थे.....किसी ने भी उससे देश-धरम के बारे में नहीं पूछा था.....कुछ भी नहीं बोलता था वह.....

जब भी साधकों ने उसे पाया, तो कपाल पात्र में मदिरा के साथ.....और उसी अवस्था में एक दिन वह मेरे कक्ष में प्रवेश कर गया.....उसकी आँखों में प्रेत नाच रहा था—हाथ और पाँव आँधी में हिलते वृक्ष की तरह अस्थिर हो रहे थे.....मैंने कभी भी उसे उस रूप में नहीं देखा था, किसी को नहीं देखा था, कभी नहीं देखा था... ...

''ओह, मेरा शरीर किस कदर काँपने लगा था—स्वेद-बूँदों से लथपथ कंचन-सी देह नीलपत्थर हो गयी थी और कंठ, बैशाख की धरती-सा, सूख गया था ।'' वह मन-ही-मन बुदबुदाई थी ।

लौंगा ने सर को आकाश की ओर उठाया और लम्बी साँस लेते हुए अपनी दायीं तलहथी को गले पर ऊपर से नीचे तक फेरा था, जैसे अभी-अभी वह भयानक घटना गुजरी हो और वह उससे साफ बच निकली हो । उसने अनुभव किया, उसके चेहरे पर धाम की हलकी परत जम आई है ।

और फिर देखा कि सलेस उसी पोखर के नजदीक पहुँच गया है ।

उसकी चेतना सहसा झनझना उठी ।

मन में सोचा, ''दोनों बहनों को ही मालूम है—उस सरोवर के नीचे के रहस्यमहल के बारे में और अब उनदोनों के सिवा वहाँ कोई जाता भी नहीं..... न उस अपरिचित तांत्रिक ने वैसा अभद्र व्यवहार किया होता, न उस तंत्रपीठ को सदा के लिए गुरु के द्वारा वर्जित पीठ घोषित किया जाता । तंत्रपीठ हमेशा के लिए बंद गया था । पीठ के सभी तांत्रिक अपनी-अपनी दिशाओं में लौट गये थे—गुरु भी हिमालय के किसी रहस्य प्रदेश में चले गये तो, आज तक नहीं लौटे. ..सलेस भी गुरु की आज्ञा पाकर अपना देश लौट गया था.....एक मैं ही इस अभिशप्त प्रदेश में उल्कापिण्ड-सी आज तक भटकती रही हूँ—तेजहीन, प्रभाहीन होकर; कहाँ जाती मैं, किसके पास ? माँ, पिता का द्वार ही नहीं, देश का भी द्वार मेरे लिए बन्द हो चुका था । विरोध कर तंत्र जो सीखने आई थी । न सिद्धि मिली, न सलेस ।''

लौंगा की आँखें छलछला आयीं । उसने कोरों के आँसू को अंगुलियों से हटाते हुए कहा, ''लेकिन सलेस, तुम्हें ही आज तक सिद्धि कहाँ मिली है । सिद्धि मिली होती तो, तुम फिर मोरंग तक आते, मुझसे मिलने !.....लेकिन नहीं, यह कौन कह सकता है कि तुम्हें सिद्धि नहीं मिली । सिद्धि मिली, तभी तो तुम मुझमें इतना धैर्य जगा गये, इतना विश्वास, जागृति की नई दीप्ति । यह जो अन्धकार में प्रकाश की तरह चल पड़ने की इच्छा मुझमें बलवती हो गयी है, वह कैसे ? तुम्हारी सिद्धि के स्पर्श से ही तो....फिर मैंने कैसे सोच लिया कि तुम्हें सिद्धि नहीं मिली । क्षमा

करना, इस हतास बुद्धि की उड़ान ही कितनी दूर हो सकती है.....लेकिन सलेस तुम्हें उस दुधिया सरोवर पर नहीं जाना था, जिसे गुरु ने वर्जित, अभिशप्त पीठ घोषित कर दिया है, यह कहते हुए कि यह तंत्रपीठ किसी भी शिष्य के लिए भविष्य में अनिष्टकारी सिद्ध हो सकता है ।.....गुरु के आदेश की अवहेलना निरापद नही है सलेस....''

लौंगा का हृदय शंकाओं से विचलित हो उठा । उसके पाँव दुधिया सरोवर की ओर बढ़ने के लिए उठे, लेकिन आदेश की अवहेलना का फिर स्मरण हो आया तो, मन ही मन बोल पड़ी, ''नहीं गुरु-आदेश की अवहेलना कर मुझे किसी अलभ्य की प्राप्ति स्वीकार नहीं, लेकिन क्या इसी कारण सलेस के प्राणों पर पड़े संकट को विस्मृत कर दूँ ? नहीं, यह तो और भी स्वीकार नहीं । बड़ों के आदेश की उपेक्षा पाप है, लेकिन इसी कारण किसी के प्राणों पर पड़े संकट से विमुख हो जाना तो महापाप है । पर मैं कर ही क्या सकती हूँ ?''

निराशा से उसका चेहरा श्याम पड़ गया ।

वह स्फुट स्वर में बुदबुदाई, ''और मैं कर भी क्या सकती हूँ, सिवा इसके कि मंगल की कामना में स्वयं प्रार्थना-गीत बन जाऊँ ।'' एक अनन्त अशांति के बीच वह घिर गयी हो जैसे । मन ने कहा, ''प्राण-रक्षा, वचन-रक्षा से अधिक श्रेष्ठ और मनुष्योचित कर्म है, जो प्राणरक्षा से विमुख होता है, वह धर्म के मर्म से विमुख हो जाता है । भूलो नहीं लौंगा, इसी सलेस ने कभी तुम्हारी मर्यादा की रक्षा के लिए तंत्रपीठ की उस अटल विधि का अतिक्रमण किया था, जिसके अनुसार किसी भी परिस्थिति में कोई साधक, साधिका के कक्ष में प्रवेश नहीं कर सकता था । स्मरण करो, तुम्हारी चीख पर सारे साधक गुरु-वचन के पालन में जब शिल दिख रहे थे, तब सलेस ही था, जो उस अनियंत्रित हाथी-सा अवधूत के समक्ष पहाड़-सा आ खड़ा हुआ था, नहीं तो तुम उस मदोन्मत्त हाथी के पाँवों के नीचे ही कुचल जाती । आज वही सलेस संकट में है, तो गुरु-वचन की स्मृति तुम्हें कायर बना रही है । तुम भूल रही हो लौंगा, कोई भी वचन, निषेध, उपदेश, अपने समय तक ही सार्थक होते हैं, समय-परिवर्तन के साथ उसका औचित्य भी स्थिर नहीं रहता। संभव है किसी काल में वही फिर प्रासंगिक हो उठे, लेकिन हर पल के लिए उसे सत्य की तरह स्वीकारना जीवन के लिए घातक ही होगा ।.....अगर तुम कुछ नहीं कर सकती हो, तो इतना तो कर ही सकती हो कि इसकी खबर किसी तरह अंगदेश के पकरिया राज तक पहुँचवाओ । सब विपरीत परिस्थितियाँ अनुकूल हो जायेंगी । तुम्हारा प्रण भी रह जायेगा और सलेस के प्राण भी ।''

''लेकिन किसके द्वारा संदेश पहुँचवाऊँ'', लौंगा अपने से बोल उठी,

''एक थी प्यारी चील, वह भी अब जीरुआ-पचुआ के पास है । क्या करती रख कर । सलेस की स्नेह-छाया के अभाव ने तो सारे भावों से विच्छिन्न कर दिया । जब सारी इच्छाओं का ही त्याग करती गयी, तब विश्वासी चील ही मुझे किन सपनों के देश में उड़ा ले पाती, उसे भी उड़ा दिया ।''

''एक युक्ति तो है''—मन के एक कोने से स्वर फूटा, ''भूल गयी लौंगा, यही पहर तो अंग के व्यापारियों का अपना देश लौटने का है ।''

और जैसे उसके मुखमंडल पर किसी ने चाँदनी पोत दी हो । एकदम उत्फुल्ल हो गयी थी वह । कुछ उस तरह से कि उसकी मुट्ठी में मणि आ गयी हो । उसने उस सुख को ठीक से देखने के लिए अपनी आँखें बन्द कर लीं और उसकी बंद आँखों में, एक कतार में बंधी साठ बैलगाड़ियाँ आती हुई स्पष्ट होने लगीं । गाड़ियों पर अपने सामानों के साथ बैठे, सोये—तीन सौ व्यापारी । व्यापारियों के बीच से ही चैता के बोल बज रहे हैं ।

चैतै मास चुनरी रंगा दे हो बालम चैतै मास ।
चुनरी रंगा दे, चोलिया सिला दे ।
धीरे-धीरे बेनिया डोलाय दे हो बालम चैतै मास ।
चैतै मास झुलनी गढ़ा दे हो बालम चैतै मास ।

बैलों के गले की घण्टियों और गाड़ियों के चक्कों का श्रृंखलाबद्ध अनगढ़ संगीत ।

लौंगा को लगा जैसे वह उन बैलगाड़ियों की ओर दौड़ पड़ी है ।..... दौड़ती, हाँफती वह कतार के आग की बैलगाड़ी के सामने खड़ी हो गयी है ।.. ..गाड़ीवान ने पीछे की ओर झुकते हुए बलपूर्वक रास खींचा है ।.....पहली गाड़ी के रुकते ही दूसरी रुकी है, फिर तीसरी, चौथी, पाँचवीं, दसवीं, बीसवीं, तीसवीं, पचासवीं और साठवीं तक रुक गयी है । चक्के ओर घण्टियों की आवाजें आरम्भ से शुरू होकर दूर तक पीछे जा कर शांत हो गयी हैं.....लौंगा हाथ जोड़ कर कहती है, ''हे अंग के व्यापारियों, यह संदेश पकरिया राजवाले को जितनी शीघ्रता से हो, पहुँचाओ कि सलेस के प्राण संकट में हैं.....''

प्राण संकट में हैं, यह कहते ही लौंगा का स्वप्न छितर गया था, आँखें खुल गयी थीं । सामने न तो बैलगाड़ियों की कतार थी, न व्यापारियों का गूंजता हुआ विरहा । कहाँ से होता भला । वे व्यापारी तो कहीं रास्ते में ठहर गये थे, भोर की प्रतीक्षा में । जीरुआ-पचुआ ने डंके पर चोट जो की थी ।

उसने तो यह बात सोची ही नहीं । उसकी विकलता हठात ही फिर तड़प उठी । चिन्ता में सर उठा तो, आँखें आकाश पर फैल गयीं । थकी-थकी

आँखों को वह शून्य में घुमाती रही....''अरे यह'' वह चौंकी, ''कैसी छाया यह डोल रही है ?''

कभी वेगवान गति से, कभी मंद गति से, कभी वृत्ताकार में तो कभी एक ही दिशा में, कभी शंख आकार में तो कभी पंखों को खोले और कभी बहुत ऊपर हो जाती है ।

''अरे यह तो मेरी अपनी ही प्यारी चील है, ललिता'' लौंगा हर्ष से चीख-सी उठी । और उसने दायें हाथ की हथेली को पताका की तरह अपने दायें चेहरे से सटाते हुए जोर से आवाज दी—'ललिता'

और आवाज को पहचानते हुए चील अपने पंखों को समेटे अवहीन उड़ान में नीचे आ गयी, एकदम नीचे की तरफ और क्षणों के बाद ही वह लौंगा के कंधे पर थी । उसके पैरों में फसी वंशी छिटक कर दूर गिर गयी थी । ''अरे, यह तो सलेस की वंशी है ।'' सोचते ही लौंगा का हृदय नगाड़े पर उठी आवाज-सा कंपित हो उठा, ''निस्संदेह, जीरुआ-पचुआ के संकेत पर ही ललिता सलेस से वंशी झपट कर ले उड़ी होगी । अब तो आत्मरक्षा का आखरी कवच भी उससे छिन गया है । वंशी की उपस्थिति में तो दोनों बहनों का महा सम्मोहन ही निष्क्रिय सिद्ध हो रहा होगा, तभी तो.....अब यदि ललिता को वंशी के संग पुनः दुधिया सरोवर पर भेजती हूँ तो, संभव है दोनों बहने वंशी को ही अपने अधि ाकार में ले ले और यह भी हो सकता है कि तोड़ कर इसे सरोवर मे फेक....नहीं, इसे भेजना ठीक नहीं.....इसकी जगह यही श्रेष्ठ है कि ललिता को राज पकरिया ही भेज दूँ ।.....व्यापारी तो परसों-तरसों संवाद पहुँचाएंगे और मेरी ललिता तो साँसो के सौ बार चढ़ने-उतरने के साथ ही.....''

लौंगा को जैसे मुक्ति का कोई दिव्य मंत्र ही मिल गया हो । एक क्षण का भी विलम्ब किए बिना उसने वंशी उठाई और ललिता को लिए अपने कक्ष में चली गई.....भोजपत्र पर कुछ शब्दों में संदेश लिखा और उसे ललिता की चोंच के मध्य में फँसा दिया । जैसे कुछ और जानने की जिज्ञासा में चील ने अपनी चमकती आँखें लौंगा पर जमाईं तो उसने वंशी को उसकी घ्राण-नली के निकट लाया; फिर ललिता को लिए कक्ष से बाहर हो गयी ।

बाहर आते ही उसने अपनी फैली हुई हथेलियों से ललिता को फूल की तरह अपनी आँखों के समांतर उठाया.....उसे गहरे स्नेह से देखा और आकाश की ओर उछाल दिया ।

अंजुली से छुटते ही ललिता ने डैनों को आकाश के ललाट पर भृकुटी-सा तान लिया और तीर की तरह ऊपर उठ गयी.....फिर पंखों को ललित गति से

चलाती हुई अंगदेश की ओर मुड़ गयी ।

लौंगा ने वह सब कुछ देखा । उसका मुखमंडल, जो कुछ क्षणों के पूर्व पैड़वा के चाँद-सा आभाहीन हो रहा था, वह सहसा ही पूर्णिमा के खिले चाँद-सा चमक गया, चाँदी के चमचमाते कटोरे-सा ।

३५

''मैं तो यह देख कर हतप्रभ हूँ कि इतने वर्षों के बाद भी पीठ के इस बाहरी उद्यान और वाटिका पर काल के भागते चरण-चिन्हों की कोई छाप तक अंकित नहीं ।. ...अब भी कुरैया के वृक्ष, रमणियों के आलिंगन के बिना ही; तिलक के वृक्ष उनके निहारे बिना ही; अशोक के वृक्ष उनके पदाघात बिना, और बकूल के वृक्ष रमणियों के रसीले अधर के स्पर्श के बिना ही खिल रहे हैं; अमराईयों में कोयल का वैसा ही विकल कर देना वाला पंचम राग;'' न जाने किस सुधि में लीन होते हुए सलेस ने खोए-से स्वर में कहा ।

''नाथ, रात्रि के इस तीसरे पहर में यूँ ही कुहुक गयी कोयल पर जितना विचार कर रहे हो, उसका शतांश भी हमारे हृदय की अनवरत पुकार पर है ?'' जीरुआ ने खोए-से स्वर में कहा ।

''और प्रिय, जितना कि तुम कुरैया, तिलक, अशोक और बकूल वृक्षों के पुष्पित होने से मुग्ध हो रहे हो, क्या इसकी भी सुधि है कि आज कान्त का सानिध्य पाकर हमारी देह भी किस तरह माधवी लता हुई जा रही है, बौराया मन कचनार-सा महक रहा है ?'' पचुआ ने उपालम्भ के मीठे स्वर में कहा और बरौनियों को पुतलियों पर झुकाती हुई तिरछी आँखों से सलेस को देखा ।

लेकिन सलेस तो जैसे कहीं और खोया हुआ था । आँखें इस बात से बिल्कुल उदासीन थीं कि जीरुआ-पचुआ के जूड़े पर बंधे आभूषण, और गले के रत्नाभरण पर दोनों की चंचल अंगुलियाँ चित्त को कितने चंचल करने वाली हैं । इस ओर भी नहीं कि उनके अंगों का ललित संचालन किस तरह रात को और भी रस-राग पूर्ण बना रहा है । किस तरह केश-गुच्छ को मुखमंडल पर ला देने से वह पूर्ण चंद्र के मध्य लटक गये बादल के सौन्दर्य को मात देने वाले बन जाता है ।

इस घोर अनादर से कितनी आहत हो रही थीं दोनों; कैसे-कैसे भाव उठ रहे उनके मुखमंडल पर—कभी चिन्ता के, कभी भय और कभी क्रोध के ।

अनादृत जीरुआ-पचुआ ने सलेस की एक-एक बाँह पकड़ी और उसे

खींचते हुए पीठ के प्रवेश-द्वार तक चली आई ।

''वाम, मैंने तुम्हें मनाने के लिए कौन-कौन से उपाय नहीं किए, किन-किन हाव और हेला का सहारा नहीं लिया, वाणी के जो भी शृंगार हो सकते हैं, किया, लेकिन दुःशील कभी विनीत नहीं हो सकता । निष्ठुर कभी नन्दन नहीं हो सकता'' पचुआ के स्वर में हठात ही क्रोध उबल पड़ा । ''तुमने मेरे उस शृंगार का अपमान किया है, जिसके विधान में मैंने कितने याम व्यतीत किये हैं ।''

''तुम अब भी नहीं समझ रही हो कि यह सौन्दर्य नहीं, यह प्रसाधन नहीं, यह नग्नता है, सौन्दर्य का अपमान, यह भोग की प्रवृत्ति है, यह ऐसी गति है, जो विवेक को सुलाती है । यह नग्न शरीर, तुम्हारे प्रति सम्मान का भाव नहीं, घृणा का भाव ही जागृत करता है और पुरुष को आकृष्ट करने का तुम्हारा यह उद्योग, एक दिन स्त्री जाति के लिए अति अमंगलकारी सिद्ध हो तो, कोई आश्चर्य नहीं । शरीर की उद्दाम लालसा के वशीभूत होकर चेतना का साथ छोड़ देना—मानव की सबसे बड़ी पराजय है । यह मैं तुम्हें आरम्भ में ही बता चुका हूँ, और तुमने आरम्भ से ही मेरी अनसुनी की है, संस्कृति के इस देश मे देह की यह अभिव्यक्ति !! किस प्रेत की तप्त साँसें यहाँ आ गयी हैं कि प्राण का रस ही सूखने लग गया है ।''

''मैं यहाँ तुमसे विराग की भिक्षा नहीं माँगने नहीं आई, और सुनना ही चाहते हो तो सुनो, मैं तुमसे ही माँगने आई हूँ ।'' जीरुआ ने सलेस की आँखों पर अपनी आँखें जमाते हुए कहा ।

''सच कहूँ, मैं तुम्हारे क्रोध या अनियंत्रित आकांक्षा से थोड़ा भी विचलित नहीं हूँ । मैं फिर कहूँगा, जब तुम भोग पर ध्यान केन्द्रित करती हो, तब तुम अत्यधिक रूपवती दिखना चाहती हो; क्रोध पर ध्यान करती हो, तो क्रूर दिखती हो; ऐसा क्यों न करती हो कि अपनी आत्मा पर ध्यान केन्द्रित करो, तब इसका आत्मज्ञान होगा कि अभी तुम क्या हो, और तुम्हें क्या होना चाहिए ! यह भी सच है कि अभी तुम जिस मार्ग पर हो, उसी पर हमारा समाज भी हाँफ रहा है और इसे इससे मुक्त किए बिना धरती पर निर्मल सुख और शांति की कल्पना भी नहीं हो सकती; महीने भर यहाँ रह कर मैंने यह और भी गहराई से जान लिया है । और मैंने यह भी जान लिया है कि साधू-सन्यासी स्त्रियों से क्यों दूर भागते फिरते हैं, क्यों पर्वतों की खोह में शरण ले लेते हैं; तुम्हारे इसी कृत्रिम रूप और देह के आकर्षण से बचने के लिए—जिसके द्वारा स्त्रियाँ पुरुषों का शिकार करना चाहती हैं, उसे बांधना चाहती हैं । स्त्रियों का यह आकर्षण इतना प्रबल होता है कि आत्मा का तेज भी वहाँ असहाय हो जाता है.....अच्छा होता कि स्त्री अपनी

ऊर्जा का उपयोग आत्मा की जागृति के लिए कर पाती और जिस दिन ऐसा होगा, सन्यासी-साधू उससे भागेंगे नहीं, उसके समीप होंगे । तब साधुओं, योगियों की सिद्धि भी आसान हो जायेगी । स्त्रियाँ शरीर के शृंगार में व्यर्थ ही अपनी शक्ति गवाँ देती हैं । अभी इस सृष्टि को रूप और देह में समाधि की आवश्यकता नहीं, आत्मा के शृंगार की है, और आत्मा का शृंगार यह भोग नहीं है, बल्कि इसे उनींदी आँखों से देखना है.....मैंने बार-बार कहा है और हर बार यही कहूँगा कि हमारी रूप-साधना, देह-साधना हमारी उस उर्जा के क्षय का कारण है, जो उर्जा हमें आत्मानुभूति कराती है; जिसे हम विश्व-कल्याण में संलग्न कर सकते हैं; और जिसकी अभी अनिवार्य आवश्यकता भी है । भौतिक तृष्णा की तृप्ति में ही ऊर्जा का यह अपव्यय, किसी भी काल में, किसी भी लोक के चेतन-अचेतन के लिए अनिष्ट का रंगमंच ही तैयार करना है । मैं जानता हूँ कि तुम दोनों भोग को ही जीवन का चरम लक्ष्य मान बैठी हो, भोग ही तुम्हारे लिए आत्मा का सुख है, आत्मा है, इसी से तुम शरीर के सुख पर इतना बल दे रही हो, तुमने तंत्र की साधना भी इसीलिए की है, यह भुला कर कि तंत्र का उद्देश्य भी चिन्मय आत्मा का आनन्द उठाने के लिए ही है, न कि इस स्थूल शरीर को सुख प्रदान के लिए... ...इसी से तुमने शरीर को ही सुन्दरतम रूप में प्रस्तुत किया; और तुमसे आत्मा का सौन्दर्य दूर हो गया, आत्मा की शक्ति भी दूर हो गयी—वह शक्ति, जो इस देह के सौन्दर्य से अलग एक दूसरे लोक में खुलती है ।'' आकाश की ओर निहारते हुए सलेस ने मंद स्वर में कहा ।

''शठ, तुम मेरी जिस शक्ति को तुच्छ सिद्ध करने पर तुले हो, उसका तुम्हें ठीक से ज्ञान नहीं, और इसीसे तुम आत्मा-सात्मा का प्रलाप लेकर बैठ गये हो ।'' वक्ष पर लटके चन्द्रहार को मसलती जीरुआ ने कहा और धम्म से वहीं एक शिलाखंड पर बैठ गयी ।

''मैं तुम्हारी सारी शक्तियों से परिचित हूँ, तभी तो मैं कह रहा हूँ कि तुम्हारी शक्ति में भक्ति का अभाव है और इसीसे यह भोगवादी है, अहंकारी है, अकल्याणकारी है । तुमने अपनी शक्ति को निर्मल करने की, साधना ही नहीं की, और शक्ति की निर्मलता तो चित्त की निर्मलता पर ही निर्भर करती है । तुमने कभी क्या चित्त को निर्मल करने की कोशिश की ? अगर कभी ऐसा कर सकोगी तो तुम्हारी यह शक्ति मनुष्य का जीवन लेने की जगह जीवनदायिनी बन जायेगी । मैं यही निवेदन भी करने यहाँ आ गया हूँ । इसे अस्वीकार नहीं करता कि तुम्हारे आकर्षण में इतनी शक्ति है, कि किसी का ध्यान बार-बार चंचल हो उठे । यह अस्वाभाविक भी नहीं है, तमोगुणी शक्ति के सम्मुख सतोगुणी शक्ति दुर्बल पड़ ही

जाती है, क्योंकि तमोगुनी शक्तिशाली भी अधिक है, और मनुष्य का खिंचाव भी उसकी ओर पहले होता है । मुझमें भी इसका जो अवशेष है, वह मेरे चित्त को स्थिर होने ही नहीं देता, साधना में अप्सराओं की छवियों का उभरना इसी कारण होता है ।''

''पागलपन की पराकाष्ठा पर पहुँच गये हो तुम । बंद भी करोगे यह प्रलाप या.....।'' कहते-कहते पचुआ के ओठ फड़फड़ा उठे ।

''मैंने तुम्हारे किसी अत्याचार का विरोध नहीं किया है, बल्कि इसे भी नियति मान कर स्वीकारा है । इस स्वीकार में कहीं कोई दुख नहीं है, कहीं कोई पीड़ा नहीं, तुम भले ही अपने अहंकार के कारण ऐसा समझो । लेकिन भूलो मत, ऐसे अहंकार को लेकर मरना ही शुद्र मृत्यु है, परोपकार के भाव में मरना—क्षत्रिय मृत्यु है, सुख की कामना में मरना—वैश्य मृत्यु है और विश्वकल्याण-भाव में मृत्यु—ब्राह्मण मृत्यु है, तभी तो हमारे ऋषियों ने सृष्टि के मंगल की ही निरन्तर कामना की, और उसी कामना में अपनी देह की लीला भी छोड़ी । अगर इसी कामना में मेरा यह पार्थिक शरीर अपने-अपने तत्वों से जा मिलता है तो, मुझे दुख नहीं होगा; बल्कि अत्यधिक हर्ष ही होगा, इसीलिए भी कि मैंने तुम्हारे पिता आर्य झाँझो को वचन दिया है कि उनकी इच्छा को आहत नहीं करूँगा । जानती हो, यहाँ आते ही तुम्हारे आर्य पिता ने क्या कहा था, कहा था कि मेरी भ्रमित पुत्रियों को किसी अपराध के लिए दंड न मिले ।''

''मैं तो सारे दंड को स्वीकार कर लेती, अगर तुमने मेरी एक बात रख ली होती, लेकिन ऐसा नहीं करके तुमने जो उदण्डता की है, इसका दण्ड तुम्हें मिलेगा ही ।'' फुफकारती पचुआ ने गले के हारों को तोड़ कर एक ओर फेंक दिया और जीरुआ की ओर देखते हुए कुछ संकेत किया ।

संकेत करने भर की देर थी कि दोनों ने सलेस की एक-एक बाँह पकड़ी और धड़धड़ाती हुई दोनों पीठ के गर्भगृह में उतर गयीं ।

सलेस के लिए वहाँ कुछ भी अपरिचित नहीं था । एक-एक कक्ष से परिचित था वह । एक-एक भित्ति भित्तियों पर चित्रित थीं स्वर्ण मुर्त्तियाँ—कई-कई देवताएँ, कई-कई ऋषियों-मुनियों के बीच अवस्थित ।

सलेस ने आलोकित आँखों से देखा—तांत्रिकों के संवाद के लिए बना सभामंडप, उनके आराम के लिए अलग-अलग गृह—कितनी भव्य व्यवस्था थी—सोचते ही उसका हृदय पिघलने लगा, ''वैसे तो अब भी दुधिया तालाब को स्पर्श कर हवा सम्पूर्ण पीठ को शीतल कर रही है, अब भी वृक्षों के बीच से वनपाखियों का उठा संगीत, इन भीत्तियों से टकरा कर गूंज पैदा कर जाता है, लेकिन सब कुछ होते

हुए भी, जैसे कुछ नही है । आह, मनुष्य देह-सुख की बलवती इच्छा के सामने कितना निर्बल हो जाता है; तभी तो वह तांत्रिक स्वयं पर नियंत्रण हार बैठा था और सब कुछ देखते-देखते छिन्न-भिन्न हो गया था—तालाब में कहीं भी कंकड़ गिरे, पूरा तालाब ही लहरों से चंचल हो उठता है ।''

सलेस बीते कालखंड की स्मृतियों से कुछ इस तरह बंध गया कि उसे इसका आभास तक न हो पाया, कि जीरुआ-पचुआ ने उसके दोनों हाथों को दो शिला-स्तंभों से बांध दिया हैं ।

सुधि आई तो स्वयं को, छाती से पैर तक, शिलास्तंभ से बंधा पाया । बांधा भी गया था तो, कटिबंध की मोटी रस्सियों को जोड़-जोड़ कर, जो कटिबंध अवधूतों के लिए कभी कटिहार से मंगवा कर रखे जाते थे । सलेस आश्चर्यचकित था अपने को बंधन में बंधा देखकर—क्या यह सुधि का सम्मोहन था, या जिरुआ-पचुआ का ही ? उसने अपनी बंधी बाँहें, छाती और बंधे पाँवों को देखा तो, मुस्करा उठा ।

''दुराचारी, तुम्हारी यह हँसी तुम्हें किसी नरक में ले ही जायेगी, तुम्हें नहीं मालूम । तुम्हारा यही पीठ, तुम्हारे लिए आज से यातनागृह होगा । प्रकाश और पवन के सारे मार्गों को अवरुद्ध कर दिया जायेगा, और बुझे पड़े सभी हवनकुण्डों को प्रज्वलित कर दिया जायेगा । उस ताप में जब तुम्हारे रोम-रोम गीली समिधाएँ-से जलेंगे, तब तुम हमारे उपहास और अपमान का परिणाम जानोगे । तुम्हारी यही हँसी अनन्त रुदन और याचना में जब बदलेगी, तब समझोगे कि स्वर्ग से पतित मूर्ख की निश्चित शरण नरक है । आज का भोर तुम्हारे लिए ऐसी रात लायेगा, जिसका अंत नहीं होता ।'' बड़बड़ाती पचुआ ने पीठ के पूरब और पश्चिम के सारे वातायनों को कपाटबद्ध किया तो जिरुआ ने सलेस के दायें, बायें, आगे, पीछे के हवन-कुंडों की बुझी लकड़ियाँ सुलगा दीं । और फिर दोनों बहनें दक्षिण दिशा के द्वार पर आ गयीं

एक बार घूम कर दोनों ने देखा—सलेस के मुखमंडल पर पहली-सी ही मुस्कान अब तक व्याप्त थी । आँखें दीवारों को देखतीं और सुधियों में खोई हुयीं।

जीरुआ-पचुआ द्वार से बाहर निकल आई, और दक्षिण का द्वार भी बंद कर दिया । कुंडी चढ़ाई, ताला जड़ा और चाभियाँ तालाब के बीचों-बीच गड़े लाट के शीर्ष के मध्य में उछाल दीं ।

आकाश में ललिता ललित, लेकिन शिथिल गति से उड़ने के कारण जब ऊब जाती तो, दस कोस के वृत में प्रकाश की गति से घूम जाती, और कभी उसी गति से आगे निकलती हुई पुनः लौट आती । फिर वही ललित उड़ान—मौकनी हाथी के बीस बाँस आगे और पाँच बाँस ऊपर ।

मौकनी भी ललिता की ललित गति का पीछा करते, सिझुआ वन से निकल कर, कदली वन के बीचो बीच तेज गति से निकल रहा था—अपनी सूंड़ को थोड़ा ऊपर उठाए या फिर दायें-बायें के कानों तक करते ।

हौदे पर सवार कालीकंठ के आगे मोतीराम ने महावत छेछन से उपालम्भ के स्वर में कहा, ''दादा, आप ने विलम्ब न किया होता तो, अब तक हमलोग गंगा पार कर गये होते ।''

''क्या करें मोती, जब तुम्हारी भाभी ने मुझे यह संदेश दिया कि मोरंग जाकर जीरुआ-पचुआ को पछाड़ना है, तो मेरी बुद्धि ही पछाड़ खाकर गिर पड़ी । जीरुआ-पचुआ क्या सामान्य अवधूतिका है ? चम्पा के भैरवघाट में दस साल तक तांत्रिक साधना की है । मारण विद्या में पारंगत । पाँच सौ कोस तक मारण पात्र उड़ा सकती है । वह तो, दोनों ने अपने गुरु भद्रनाथ को वचन दिया था कि इस विद्या से किसी के प्राण नहीं लेगी, इसीसे दोनों ने दीक्षा के बाद भेष भी बदल लिया; नहीं तो एक समय था कि कोई उसके भेष भी देख लेता तो, महिनों काँपता रहता । आज भी दोनों में कोई जब डंके पर चोट करती है तो, जागती हुई रात सो जाती है—पशु, पक्षी, सुर, असुर, नर, सब ।.....तब भला मेरी क्या बिसात. ...तुम्हारी भाभी ने जैसे ही कहा कि मोतीराम आया है—मोरंग जाना है, तो सुनते ही मैं आँगन से अपने कक्ष में चला गया । स्त्री से कहा—जाकर कह दो कि ज्वर के कारण देह ऐंठ रही है, नहीं जा सकूँगा तो जानते हो मोती, तुम्हारी भाभी ने क्या कहा ? कहा, 'संकट में मित्र हो, ऐसे में देह ऐंठने से भला है कि प्राण ही ऐंठ जाय', सुन कर देह में आग लग गयी, लेकिन सोचा, अनुचित क्या बोल रही है । मोती, वह तो तुम्हारी भाभी ही है, जिसने मुझे महापाप से बचा लिया..... लेकिन चिन्तित होने की कोई बात नहीं.....तीसरी रात बीतते न बीतते हमलोग मोरंग में होंगे ।''

''लेकिन बीच में गंगा और कोशी के विशाल पाटें..... ।'' मोती की आँखों में अनायास ही चिन्ता की बाढ़ उमड़ पड़ी ।

''चिन्तित होने की बूंद भर आवश्यकता नहीं, गंगा के अजगैवी घाट पर मोटी-मोटी रस्सियों से बांधी बरियारी की नाव तैयार होगी । बस गंगा के बीच उसे उतारने भर की देर होगी । ऐसी नाव तो, हजारो मन सामान लेकर हमारे अंगदेश

से समुद्र के बीच द्वीप-सी झूमती चलती थी, फिर सौ-पचास मन की बात ही क्या। और गंगा-कोशी समुद्र तो हैं नहीं मोती ।.....उधर, वह देखो मोती, वह देखो'' छेछन ने उल्लास से उत्तर की ओर हाथ उठाते हुए संकेत किया, ''किस तरह हमारे लोग बरियारी को गंगा पर रोके खड़े हैं ।''

''आश्चर्जनक, अदभुत'' कालीकंठ ने चमत्कृत आँखों से देखा,

''इस पर तो पाँच गाँव के लोग उतर जाएं तो, कुछ नहीं हो । यह नाव है या दिखाई देता पठार ।''

''मुझे तो गंगा, भाभी की डबडबाई आँखें लग रही है और यह नाव उस घने विषाद के बीच राजमाता का धैर्य ।'' मोतीराम का स्वर कुछ भींग-सा गया था ।

''हाँ मोती, राजमाता का धैर्य ही राज को धर्म की तरह संभाले हुए है।'' छेछन ने कहा और मौकनी को तेज-तेज चलने का संकेत किया तो, वह सावन में पछिया से प्रेरित बादल-खंड की तरह गतिशील हो गया ।

आकाश में अब भी देवपक्षी की तरह ललिता ललित गति से गंगा के विस्तृत तटों को नापती, लहरों के ऊपर विशाल वृत्त को बना रही थी ।

३७

जिरुआ-पचुआ सेज पर लेटी पड़ी थी, जैसे कई दिनों से एकदम नहीं सोई हों । सम्पूर्ण शरीर की कान्ति मलिन पड़ गयी थी; बाँधे गये जूड़े छितराए हुए; अंग-अंग के आभूषण इधर-उधर बिखरे, फेंके हुए । शरीर पर जो कुछ भी थे, वे सब एकदम अस्त-व्यस्त । सिन्दूर का शृंगार बिखर गया था । माथे की बिन्दी लटक गयी थी और बायें गाल पर काजल के तिल भी । रह-रह गीली हो जाती आँखों ने काजल को धो दिया था । अधरों पर जमा ताम्बुल का रंग ही नहीं उड़ गया था, हथेलियों पर मेंहदी का जमा रंग भी मलिन पड़ गया था । चन्दन और केशर के अरगजे की सुगंध, उबटन की चमक की तरह, उड़ गयी थी । जूड़े के पुष्प की पंखुड़ियाँ कुचली पड़ी थीं । न दन्त पंक्तियों में वह राग रह गया था, न साँसों में वह सुवास ।

एकदम श्रीहीन हो गयी थीं दोनों ।

वे अपने रूप की पराजय से ही सिर्फ आहत नहीं थीं, इस बात से भी थीं कि उनके दंड के तरीके भी उन दोनों का उपहास कर गये थे ।

दंड की उस कठोर व्यवस्था पर कोई कड़े दिल का पुरुष भी याचना और दया की भीख ही मांगता, लेकिन तब भी सलेस मुस्करा ही रहा था । यह बात दोनों को और भी उद्‌वेलित कर रही थी ।

कि सहसा चौक पड़ीं वे—''इतनी मध्य रात्रि में यह कैसा नाद ?''

दोनों ने उसी दिशा की ओर अपने कानों को लगाया । कि दक्षिण दिशा से आ रहा नाद और भी तेज हो उठा था ।

''यह तो रथ के चक्कों और घोड़े के टापों का नाद है । कौन इस समय इधर आ सकता है, क्या उद्‌देश्य होगा ?'' एक साथ ही दोनों शंकाओं से घिर गयीं । एक-दूसरे को देखा भी, लेकिन उठ कर उधर देखने की इच्छा नहीं हुई । चुपचाप उसी तरह लेटी हुई, प्रत्येक पल और भी घना होते जाते नाद को सुनती रहीं ।

''आश्चर्य है, यह नाद तो अपनी ही हवेली की ओर लगातार आते हुए लगता है'' जीरुआ ने कहा, ''कहीं अंगदेश के लोगों को इसकी खबर तो नहीं मिल गयी ?''

सुन कर पचुआ भी जैसे चौकी । कहा, ''संभव है ! लेकिन उन्हें इसकी सूचना कैसे मिल सकती है ? कहीं अपनी नौ सौ शिष्याओं ने ही तो नहीं, जो सलेस की बातों से बहक कर उसी के रंग में रंग गयी हैं ?''

''नहीं । वे अबोध कन्याएँ तो प्रायश्चित के लिए व्रत पर बैठी हुई हैं। मालूम हुआ है, महीने भर के प्रायश्चित-व्रत पर हैं ।''

''तब फिर कोन सलेस का संदेश वहाँ ले गया होगा ?''

''संभव है, ललिता ने !'' कहते ही जिरुआ चौक उठी ।

''हाँ, हमलोगों ने तो अब तक इस ओर ध्यान ही नहीं दिया । सलेस की वंशी लेकर ललिता उड़ी तो फिर गयी कहाँ ? वंशी का क्या हुआ ?''

''कहीं वंशी लेकर वह अंगदेस तो नहीं जा पहुँची ?''

''नहीं, उसे क्या मालूम कि सलेस किस देस का है ? हाँ, यह हो सकता है कि वह उसे लेकर आचार्या के पास पहुँच गयी हो ।'' कहते-कहते पचुआ की आँखें फैल गयीं ।

''यही संभव है, और फिर आचार्या ने ललिता के माध्यम से ही संदेश भी भिजवाया होगा ।''

चक्कों का घर्घर नाद और टापों की तीव्र ध्वनि से सहसा ही सारा सन्नाटा चूर होकर बिखर गया था । बीस बाँस की दूरी से नाद उठ रहा था ।

जीरुआ-पचुआ धड़पड़ा कर उठ बैठी । आँखों-आँखों में बातें हुयीं और

दोनों कक्ष से बाहर निकल, दालान के किनारे आ गयीं ।

''अरे यह तो भगवती है और साथ में पाँचो बहन, लेकिन इस समय ?'' जीरुआ ने कहा, ''संभव है हमारी सहायता के लिए ही सब आ गयी हैं ।''

दोनों धड़धड़ाती हुई नीचे उतरीं ।

पचुआ ने बंद हुड़का खोला तो सामने पाँचो बहन भगवती खड़ी थीं । पीछे बाँस भर की दूरी पर पूरे वेग से आता हुए रथ खड़ा हो गया था, लेकिन चक्कों और टापों से उठे धूल-कण; बादल की तरह, रथ के आस-पास छाये ही हुये थे ।

और छाई हुई थी एक गहरी चुप्पी । न जीरुआ-पचुआ के मुँह खुल रहे थे, न कोई भगवती ही बोल रही थी । कौन आरम्भ करे संवादों का क्रम ? भगवती सब कुछ समझ रही थी । जीरुआ-पचुआ के आहत मन से भी वह अपरिचित नहीं थी । भावों के बनते-छँटते बादलों को देख रही थी, और समझ भी रही थी । तब कितनी देर चुप बनी रहती !

शांत लेकिन चेतावनी के स्वर में भगवती ने ही पूछा, ''अब और क्या सोचा है तुम दोनों ने ? सलेस को पाना चाहती थी, वह संभव न हो सका । संभव हो भी नहीं सकता था । तुम आग से बर्फ को उठाना चाहती थी, भला यह हो सकता था क्या ? और जब यह न हो सका, तो तुम दोनों ने सलेस को हवन-कुण्ड की जलतीं लकड़ियों के बीच छोड़ दिया; यह जानते हुए भी कि योगी जलते कुण्डों के निकट या चारो ओर से जलती धुनियों के बीच ही रहना चाहता है....तुम दोनों ने यही सोचा कि जलती लकड़ियों की ताप से सलेस विचलित हो उठेगा, लेकिन यह नहीं हुआ, उस ताप से तो सलेस का तेज और बढ़ गया है ।''

''यह रहस्य भगवती को कैसे मालूम हो गया ?'' मन में यह प्रश्न उठते ही दोनों के मुखमंडल और भी मलिन पड़ गये, जेसे तेज गति से उठी आँधी के बीच चाँद की छवि पड़ गयी हो । बस फटी-फटी आँखों से दोनों देखती रहीं ।

''मेरे निषेध के बाद भी तुम अपनी ही जिद पर डटी रही, यही सबसे बड़ी भूल थी'' भगवती ने क्षण भर रुकने के बाद फिर कहा था, ''तुमने सोचा कि सलेस को यातना और दंड से भोग की भूमि पर उतार लाएँगे, जो किसी भी तरह नहीं होना था । मैंने तुमसे कई-कई बार कहा था, लेकिन स्वीकारने वाली कहाँ थी तुमदोनों । व्यक्ति जब इन्द्रियों की बेड़ियों से जकड़ा होता है, तब उसे आत्म की ओर उलट कर देखना एकदम कठिन होता है । उसकी गति पशु की गति तक ही बनी रहती है, जिससे वह सिर्फ बाहरी पदार्थों को ही समझ सकता है, उसी की ओर आकर्षित भी होता है, वह अन्तरध्यान नहीं हो सकता, सौभाग्य से जो वरदान मनुष्य

को ही प्राप्त है.....मुनष्य से नीचे के जीवों को नहीं । सलेस ने आत्मदर्शन किया है.....लेकिन यह भी नहीं है कि अब तुम्हारी शांति और मुक्ति के सारे मार्ग अवरुद्ध हो गये हैं । इस सृष्टि में सभी अभिव्यक्तियाँ उसी सत् की अभिव्यक्तियाँ हैं और ये पुनः उस सत् को प्राप्त कर सकती हैं, लेकिन यह, शरीर से ऊपर उठे बिना संभव नहीं । शरीर से बद्ध व्यक्ति दुख से ही सिर्फ दुखित नहीं होता है, सुख से भी दुखित होता रहता है...स्त्री होने के नाते मैं तुमदोनों की इस निरीह और करुण स्थितियों से कम व्यथित नहीं हूँ । संभव है, तुम्हें ज्ञात नहीं हो कि तुम्हारी नौ सौ शिष्याएं परपीड़न और अपकर्म के मार्ग को छोड़ कर, माह भर के प्रायश्चित-व्रत के बाद, लोकमंगल का मार्ग ग्रहण कर लेंगी, लौंगा मालिन उनके भविष्य के जीवन की मार्गदर्शिका होगी.....अब तुमदोनों को सोचना है कि, कौन-सा पथ तुम्हारा हितकारी होगा और कौन-सा मंत्र तुम्हारा पाथेय ।...इस ब्रह्म वेला में मैं तुम्हें चेतने के लिए ही नहीं, यह सूचित भी करने आई हूँ कि हिमालय के आँगन में स्वर्ण प्रभात फूटने ही वाला है; एक अद्वितीय अपूर्व आभा के साथ; कहीं ऐसा न हो कि नींद से बोझिल तुम्हारी आँखें खुले ही नहीं । तुम्हारी आत्मा का कमल खिले ही नहीं । तुमदोनों को जगाने चली आई थी । अब चलती हूँ ।''

जीरुआ पचुआ से कुछ भी नहीं बोला गया । बस कान ही सजग थे, न अधर खुले और न आँखें बन्द हुयीं । जैसे द्वार पर धवल प्रस्तर की दो मूर्त्तियाँ स्थापित हों । प्राणों में सिहरन तब हुआ, जब वातावरण की शांति रथ के घर्घरनाद और घोड़े के टापों की गूंज से पुनः आन्दोलित हो उठी थी ।

जीरुआ-पचुआ ने देखा भगवती पाँचो बहनों को लिए दक्षिण दिशा की ओर रथ पर उड़ी जा रही थी । धूल के बादल रथ के चक्कों में उमड़-घुमड़ रहे थे ।

३८

मैनमा ने मौकनी को रुकने का इशारा किया । कोशी का किनारा एकदम करीब था कालीकंठ और छेछन हाथी से नीचे उतर पड़े तो मोतीराम भी । सामने कोशी की शांत धार के संगीत को सुना तो मोतीराम एक दशक पूर्व की स्मृति में हठात ही खो गया । भादो का महीना था । सात दिन से अधिक हो रहे थे, लोगों ने गरजते बादल को छोड़ कर एक कोने में भी आकाश नहीं देखा था.....और वैसे

ही समय में वह अपने पिता के साथ धनहर जा रहा था.....चारो तरफ कोशी ही कोशी.....कहाँ था उसका पार, कुछ ज्ञात नहीं होता था....कोशी काली बन गयी थी और मलकाठ में फँसे बकरे-से लोग चारो तरफ मिनती गाये जा रहे थे....पिता जी के भी थरथराते होठों से मिनती फूट पड़ रही थी,

बहै पुरबैया कोशी मैया डोलै छै हे सेमार
नदिया किनारे मैया भै गेलै ठाड़ी
नैया लाहोॅ नैया लाहोॅ मलहा रे भाय
पाँचो बहिनोॅ के डोलिया उतारी दिहोॅ पार

और उसकी स्मृति आते ही मोतीराम ने उस मिनती की बची पंक्तियों को मन-ही-मन गुनगुनाया,

कथी केरोॅ नैया कोसी माय कथी केरोॅ पतवार
कौनें हे विधि नैया उतारी दिहौ पार
सोना केरोॅ नैया कोसी माय रूपा के हे पतवार
झमकैतें डोलिया उतारी दिहौ पार

''चिन्तित होने की कोई बात नहीं मोती, कोशी मैया अपनी यह नाव भी झमकाती हुई पार उतार देगी, सावन-भादो की बेमत माता थोड़े ही है यह....बस मौकनी को यहीं, इसी किनारे पर छोड़ देगें हम, और मोती तुम भी इसी पार हमारे लौट आने की प्रतीक्षा करोगे.....बस उस पार होने भर की देर है....भोर होते न होते, हमदोनों मोरंग पहुँच जायेंगे । आज नहीं लौट पाये तो कल में कोई शंका नहीं..''कहते-कहते छेछन रुका और फिर कहा, ''मोती, तुम इस तरह झमान क्यों दिखने लगे ?''

''मन में एक सन्देह उत्पन्न हो रहा है ।''

''कैसा सन्देह ?''

''यही कि अगर दादा ने घर लौटने से ही अस्वीकार कर दिया, तब ?'' एक परिचित-सा भय फिर मोतीराम की आँखों में तैर गया ।

''अरे, तो इसमें कैसा दुख ? यह संदेह तो यात्रा से पूर्व भी व्यक्त किया गया था । मैंने, तुमने ही नहीं, स्वयं राजमाता ने भी यह शंका व्यक्त की थी और सभी तरह से बहुत सोच-विचार के बाद राजमाता ने क्या कहा था, तुम्हें याद है? यही कहा था न, कि अगर सलेस राज-काज से अपनी विमुखता प्रदर्शित करता है, यहाँ तक कि राज-पाट से दूर किसी एकान्त में ही जीवन के व्यतीत करने की इच्छा दिखाता तो, किसी भी स्थिति में उसकी इस इच्छा के विपरीत अन्य आग्रह आरोपित न हो । राजमाता की ही बात नहीं है मोती, पकरिया वाली भाभी ने भी

ऐसा ही कहा कि, 'अगर मेरे नाथ को मुझसे अधिक, पृथ्वी पर दुखी प्राणियों की चिन्ता है, तो मैं अपना यह क्षुद्र दुख यूँ ही सह लूँगी । मेरे स्वामी अपने धर्म के पालन से भरत-खंड को श्रीयुक्त करना चाहते हैं, तो उसमें अगर मैं सहभागिनी नहीं हो सकती तो, विरोधनी होकर उन्हें विचलित भी कभी नहीं करना चाहूँगी । यह तो कुलदेवता राहुप का भी अपमान होगा ।' मोती, कितना विश्वास था उस समय बहू के मुखमंडल पर । ऐसे ही नहीं भारत की नारियों के लिए कहा जाता है कि पुरुष यहाँ उसकी पूजा करते हैं, और देवता स्वर्ग में उसकी प्रशंसा । जब अंग देश की नारियाँ इतनी धैर्यवान हो सकती हैं, इतनी सहनशीला; तब पुरुष होने के नाते तुम्हारी यह विकलता तुम्हें नहीं शोभती । और फिर हम ऐसी बातें सोचें ही क्यों, जो भविष्य के प्रति ही नहीं, वर्तमान के प्रति भी मनुष्य को उदासीन बना देती हैं...। मोती, हमारे पास समय बहुत अधिक नहीं है, हमदोनों तैर कर ही उस पार हो जायेंगे, कोशी मैया हम लोगों के साथ है'' इतना कह छेछन धीरे-धीरे रेत की खायी में उतरने लगा, कालीकंठ उसके पीछे-पीछे था और फिर वे कोशी की लहरों पर उतर गये ।

अन्धकार होने के कारण, मोतीराम रेत के नीचे कुछ भी नहीं देख पा रहा था, बस उस आवाज के सिवा, जो लहरों पर उन दोनों के पाँव और हाथों के चलाने से हो रही थी । उसने मशाल को और ऊँचाकर नीचे की ओर देखा, लेकिन कुछ भी दिखाई नहीं दिया । आकाश में अब भी ललिता वृत्त के आकार में चक्कर काट रही थी, कि तभी वह भी एक बृहत वृत्त का निर्माण कर आकाश में खो गयी । आँखों से ओझल हो गयी ललिता ।

मोतीराम के हृदय में हलचल मच गया, ''आखिर ललिता अचानक ही अलोपित कहाँ हो गयी ? कहीं.....नहीं, नहीं, धिक्कार है मुझे, जो ऐसी अशुभ बातें लगातार मेरे मन में उठ रही हैं ।''

''आखिर उठ ही रही हैं क्यों ?'' यह विचार फिर उठते ही वह कुछ अजीब-सा विचलित हो गया । आँखें उठा कर पीछे की ओर देखा । मौकनी सूंड़ को बार-बार प्लुत के आकार में ऊपर उठा लेता था । उसने अपनी पीठ मौकनी के अगले पैर से सटा दी और अपनी मनस्थिति पर नियंत्रण पाने के उद्देश्य से खुले कंठ से गा उठा,

मचिया बैठली हे कोसिका भीतिया अंठोगल
महलवा के बटिया जोहै छै
कहमां से आनबै कोशी चनन लकड़िया
कहाँ से बोलैबै सुतिहार

मोरंग सें मंगैबै कोशी चनन लकड़िया
चंपा सें बोलैबै सुतिहार

मोतीराम का स्वर हवा पर तैरता कोशी के पार उतरने लगा ।

अब तक छेछन और कालीकंठ भी कोशी के पार उतर गये थे । उन्होंने मोती की आवाज सुनी तो छेछन ने घूम कर आगे की पंक्तियों को उसी स्वर में रागना शुरु किया,

कथी सें छबैबै कोशिका चन्दन लकड़िया
कथी सें छबैबै गोड़ के खड़ाम

और कालीकंठ ने जैसे उत्तर में कहा,

कुल्हाड़ी सें छेबैबै कोशिका चन्दन लकड़िया
बसूली छेबैबै गोड़ के खड़ाम ।

अजीब जादू-सा सारे वातावरण में अनायास ही फैल गया था । मोतीराम ने एक के बाद दूसरे की आवाज सुनी ।

सुनते ही मोती की आँखों में मोती की चमक भर गयी । झुक कर मशाल को दाँये हाथ में उठाया और उसे हवा में देर तक हिलाता रहा ।

३६

तीन रातों तक सोकर भी नहीं सो पाई थी लौंगा मालिन । आज की रात तो पल भर के लिए भी उसकी पलकें न मुंदी । आँखों में मोरंग से लेकर अंग तक के मार्ग स्पष्ट चित्र उभर रहे थे । बाँस-बाँस भर खड़े झबराये वृक्षों के विजन वन, जिनमें व्याकुल-बेमत्त नदियों के उफनते प्रवाह; रह-रह कर सिंहों और हाथियों के मेघ सदृश्य नादों से निर्जन प्रान्तों का दहलना ।

और उस दृश्य-दर्शन से स्वयं भी लौंगा बार-बार सिहर जाती थी ।

''तीन रातें बीत गयी, चौथी बीतने को है, ललिता अभी तक लौटी नहीं, अभी तक कोई संदेश नहीं मिला, संदेश देगा भी तो कौन, एक ललिता को छोड़ कर, और वह तो उन लोगों के साथ-साथ ही चल रही होगी—किसी भी भावी संकट की अग्रिम सूचना के लिए—ऐसा निर्देश मैंने ही तो उसे दिया है, वह पहले यहाँ आ कैसे सकती है.....लेकिन रक्षकों के कोशी पार उतरते ही तो, ललिता को आ जाना था.....बस जितनी देर हो रही है, हो रही है...'' लौंगा ने मन में कहा।

बेचैनी में उसने वातायन से बाहर की ओर देखा, और उठ बैठी । बाहर

आ गयी । और आश्चर्य—उसका अनुमान एकदम सही था, दक्षिण के आकाश पर ललिता कभी दायें पार्श्व, कभी बायें पार्श्व की ओर एकदम झुकती हुई और फिर अचानक ही खुले आकाश में आवर्त बनाती उड़ी आ रही थी ।

लौंगा के दोनों हाथ उसकी ओर उठ गये । कुछ ही पल बीते होंगे और ललिता उसके सर के ऊपर आ गयी । क्षण भर के लिए हवा में रुकी और फिर सीधे वृक्ष से किसी झरे पात की तरह लौंगा के कंधे पर आ पड़ी ।

उसने बड़े दुलार से ललिता को दोनों हथेलियों के बीच लेते हुए कहा, ''एकदम सही समय में आई हो, और विलम्ब करती तो, मेरे प्राणों पर ही संकट आ जाता, न जाने कितने-कितने अपशकुन मन को घेर रहे थे । मन होता ही है ऐसा—प्रिय के अनिष्ट की थोड़ी-सी भी चिन्ता इसे हुई नहीं कि आशंकाओं के भयावह कंदरा में बदल जाता है यह । और फिर इससे निकलना कठिन ।.... लेकिन अब किसी चिन्ता की बात नहीं....तुमने तो नियत समय पर, नियत स्थान पर संदेश पहुँचाया ही होगा'', लौंगा ने ललिता की चमकती आँखों में डालते कहा, और फिर मुंदे पलकों से मन में कहा, ''रक्षकों ने संदेश-पत्र से यह तो जान ही लिया होगा कि कहाँ है दुधिया तालाब ? किस दिशा से वहाँ पहुचना होगा ? यहाँ वहाँ कैसे सही मार्ग भी भटका कर पथिक को भ्रान्त पथ पर पहुँचा देता है ! दुधिया तालाब से सटे कितने द्वार और कहाँ-कहाँ हैं ? बंद द्वारों को खोलने का गुप्त मार्ग क्या है ? तालाब के मध्य लाट पर किस दिशा से चढ़ना होगा ? लाट से नीचे उतरने पर कौन-कौन से कक्ष मिलेंगे और कहाँ है पीठ का का वह गर्भ-गृह ?.. ..हाँ उसी गर्भगृह में जीरुआ-पचुआ ने सलेस को निस्संदेह बन्दी बना कर रखा होगा और सोच रही होगी कि अन्त में विवश होकर सलेस दोनों के समक्ष आत्मसमर्पण कर देगा । इन मूर्ख बालिकाओं को ज्ञात नहीं कि नदी चाहे जितने भी प्रबल वेग से बहती हुई पर्वत को पछाड़ने की कोशिश करे, उसके शिखर पर चढ़ कर भी, तो भी पर्वत का अस्तित्व अपनी ही जगह पर स्थिर होता है; अंत में थकी हुई नदी ही धाराओं में विभाजित होकर बह जाती है, पर्वत नहीं बहता। ...सलेस वही पर्वत है, अडिग, स्थिर धरती को फोड़ कर निकले प्रकाश का पर्वत। .....उस दिन, किस तरह अपनी बातों के स्पर्श से मेरे जीवन के सारे कोलाहल को शांत कर गया था.....उस प्रकाशपुंज की आभा से, जैसे सदियों से जमे अंधकार की अनन्त परतें स्वयं ही उखड़-उखड़ कर उड़ती गयी थी । दुर्निवार दुख का अंत हो गया था ! कैसी थी वह अनिर्वचनीय अनुभूति का अनन्त आकाश, जो अनुभूति ही मेरे बाकी और नये जन्म की पूँजी है....सलेस तुम अपने उसी स्पर्श से लोक को लोकोत्तर बनाओ और क्या वर माँगू तुमसे । अगर मेरे तप का कोई पुण्य हो सकता

है तो, मेरी यह कामना फूले-फले !

४०

मौलश्री वन में मालती, फुलसर, धनसर, शीतला और गहेली के बीच बैठी भगवती आनन्द से विभोर हो रही थी ।

''सुनाती जाओ शाकम्भरी, मैं सब कुछ सुनना चाहती हूँ, एक-एक बात कहो'', उठंग कर बैठी हुई भगवती ने गंभीर स्वर में कहा, ''कहो कि किस तरह छेछन और कालीकंठ ने दुधिया तालाब के उस गुप्त तंत्रगृह के द्वारों को खोला ?''

''छेछन तो तालाब के किनारे ही रहा, किसी भी आक्रमण से रक्षा के लिए और कालीकंठ, अथाह जल में साँप की तरह तैरता हुआ, तालाब के मध्य में गड़े लाट तक पहुँच गया ।'' शाकम्भरी के कहने में आश्चर्य था, और चेहरे पर खुशी की चमक ।

''फिर ?''

''फिर, फिर जैसे साँप वृक्ष पर चढ़ता है, वैसे ही वह उस लाट पर चढ़ गया । लाट क्या था, कोस भर की सुरंग ही समझो दीदी, जिसके शीर्ष से एक जंजीर अन्दर की ओर लटक रही थी, जरूर नीचे तक गयी होगी वह जंजीर, जिसके सहारे कालीकंठ नीचे उतर गया ।''

''फिर ?'' कहती हुई भगवती उठ बैठी ।

''फिर तो प्रतीक्षा की घड़ियाँ मेरे स्पन्दनों को इस तरह तीव्र कर गयीं कि कोई उस समय मेरे हृदय से अपने कानों को सटा देता तो, उसे यही लगता कि मेरे कलेजे में कोई ढेकी ही कूट रहा है । एक बार तो, मुझे ही ऐसा भ्रम हुआ कि सारी अमराई मेरे उन स्पन्दनों से गूंज उठी है । प्रतीक्षा के उन क्षणों को मैं कभी भी विस्मृत नहीं कर पाऊँगी । तब कहीं जा कर कालीकंठ को लिए सलेस दक्षिणी द्वार से बाहर आया था । जैसे बिना कलाओं के कोई पूर्णचन्द्र उदित हो गया हो, या उगते बालारुण का प्रतिबिम्ब ही हो । मैं तो क्षण भर के लिए विष्मित रह गयी । सचमुच में, तप और कष्ट, संकल्प से प्रतिबद्ध मनुष्य को और भी अलौकिक बना देता है, सिर्फ कायर व्यक्ति ही इसके नाम-श्रवण मात्र से संध्या का सूर्य और भोर का चन्द्रमा हो जाता है ।'' कहते-कहते शाकम्भरी की आँखें एक अपूर्व सुखानुभूति से चमक उठीं ।

''आगे कहो शाकम्भरी, क्या वहाँ पर लौंगा मालिन भी आई थी, या

जीरुआ-पचुआ ही ?'' भगवती की व्यग्रता बढ़ गयी थी ।

''नहीं देवी, सलेस स्वयं ही लौंगा के कठघर की ओर बढ़ गया था । मिथ्या नहीं बोल रही हूँ, उस समय उसकी गति, सूर्य की ही गति-सी थी—गतिशील हो कर भी गति के आभास से रिक्त । संभव है, अत्यधिक अभिभूत हो जाने के कारण मेरे मन की यह दशा हो गयी हो । सिर्फ कालीकंठ और छेछन ही उसके पीछे-पीछे नहीं थे, मैं भी छुपते-छुपाते उनके संग हो गयी थी । जानती हैं देवी, जब सलेस लौंगा के कठघर पर पहुँचा, तब द्वार पर लौंगा ही नहीं, जीरुआ-पचुआ भी वहीं पर खड़ी थीं ।'' कहते-कहते शाकम्भरी की आँखें फैल कर रह गयीं ।

''क्या कहा ?'' भगवती की आँखें ही नहीं, अधर भी फैल कर गोल हो गये ।

''मिथ्या नहीं बोल रही हूँ देवी । मैं समझ ही नहीं पाई कि लौंगा ने ही दोनों को बुला लिया है, या फिर दोनों स्वयं ही आई थीं । पहले तो आश्चर्य यही हुआ कि सलेस के वहाँ आगमन की सूचना उन्हें कैसे लगी ?''

''कैसे लगी ?''

''यह तो संवादों से ज्ञात हो सका था कि दोनों बहनें अपने किये अपकर्म की दंड-कामना से लौंगा मालिन के पास आई थीं और जैसे लौंगा को सलेस के आगमन का पूर्ण ज्ञान हो, उसने उन दोनों को यह कहते रोक लिया था कि ''चित्त की चंचल गति की स्थिरता और शुद्धि तो आत्मा के साक्षात्कार से ही संभव है; मैं तो उसमें साधन भर बनने की क्षमता रखती हूँ । सच पूछो तो, तुमदोनों जिस शांति के लिए अभी तक इतनी व्याकुल-व्याकुल हो, वही शांति तो मुझे भी चाहिए ।''

''क्या ऐसा कहने के समय लौंगा की आँखों में आँसू भी झलके थे ?''

''एकदम नहीं देवी, यह भी आश्चर्य की ही बात थी । उस समय उसकी मुखमुद्रा तपस्विनी-सी थी, पूर्ण आभा से दीप्त, वाणी—जैसे किसी सिद्धि की शक्ति । जैसा मैंने उसके संबंध में सुना था, वैसी कुछ भी नहीं थी लौंगा । हाँ, जब सलेस उन लोगों के पास पहुँचा तो, जीरुआ-पचुआ की आँखों में गंगा-कोशी सीमाहीन हो गयीं । कहीं रुदन न फूट पड़े, इसीसे दोनों बहनों ने अपने काँपते अधरों को शक्ति से कस लिया था । दोनों के अंग-अंग सलेस के पैरों पर गिर कर क्षमा पाने को व्याकुल थे, लेकिन उनके अपकर्म जैसे उन्हें सबकुछ से रोक रहे थे । यह देखकर तो सलेस की आँखें ही नम हो गयी थीं ।''

''सचमुच ?'' भगवती की आँखों में जैसे सन्तोष का इन्द्रधनुष खिंच गया ।

''सत् वचन ही बोल रही हूँ मैं । दोनों बहनों को संबोधित करते हुए सलेस ने अपने अपूर्व संयत स्वर में कहा था, 'मन, जब अहंकार और बुद्धि का त्याग कर समर्पण की धारा में प्रवाहित होने लगता है, तो आत्मा के आनन्द में लीन होने के सारे प्रवेश-द्वार भी उसके लिए खुल जाते हैं; तब दीनता और ग्लानि के लिए वहाँ अवकाश ही कहाँ होता है ? प्रत्येक पल की सम और विषम अनुभूतियों में उसी असीम के आनन्द का दर्शन, मनुष्य को संसार से प्राप्त क्षुद्र आघात की भयावह व्यथा से उबार लेता है.....अब तक, तुम बहनों ने भी यह समझ लिया होगा । और इस ज्ञान के बाद कैसी ग्लानि ? कैसी व्यथा ? ठीक है कि ग्लानि से उपजी व्यथा के भाव मनुष्यता के पंथ गढ़ते हैं, लेकिन ग्लानि की व्यथा में ही बंधे रहने से तो, आत्मा का आनन्द ही सूख जाता है । आत्मा के इस आनन्द की प्राप्ति का एक आसान मार्ग, मनुष्यता का निर्वाह करते हुए, मनुष्य की मुक्ति के लिए व्यथित रहने में भी है, और आज के विषम समय में आत्मा के आनन्द को पाने का एक यही मार्ग सुगम है; असीम पुण्य से भरा, जिसमें कर्त्ता की पराजय भी आनन्द के आवेग से आन्दोलित होती है ।

''और क्या कहा सलेस ने ?'' भगवती ने सुख की एक लम्बी साँस लेते हुए कहा, तब उसकी पलकें क्षण भर अपने आप मुंद गयीं ।

''सलेस ही तो कह रहा था, सभी तो मौन-विष्मयविमुग्ध हो, उन प्रिय वचनों की स्वाति-बूंदों को कदली और बाँस वृक्ष-से ग्रहण कर रहे थे, मैं भी । उन क्षणों में मेंने अपनी ही तरह, लौंगा, जिरुआ-पचुआ, छेछन, कालीकंठ, सबके मुखमंडलों को, एक ही अनुपम-दिव्य भाव से भरा देखा, जो ऋषियों के मुखमंडल पर ही होता है । कुछ पता ही नहीं लगा कि लौंगा, जीरुआ और पचुआ पूर्व की लौंगा, जीरुआ-पचुआ है, सांसारिक कामनाओं के आवेग, आवेश से डोलती मूर्त्तियाँ । सचमुच में, वचन ही धरती पर अमृत और हलाहल है, जो मनुष्य को तत्क्षण अपने प्रभाव में ले लेता है । वचन से अलग अमृत और हलाहल क्या हो सकता है, देवी !''

''क्या सलेस ने जीरुआ-पचुआ से कुछ और भी कहा ।'' शाकम्भरी पर अपनी आँखें जमाते हुए भगवती ने फिर पूछा ।

''वहाँ, किसी एक के लिए कोई विशेष वचन नहीं था, जो था, सबके लिए था, इसीसे से सब एक ही भाव-रस से भींग रहे थे, सबके मुखमंडल पर एक ही आभा दीप्त थी । हाँ, सलेस ने जो अंतिम वचन के रूप में कहा था, वह निस्संदेह जीरुआ-पचुआ की ओर विशेष रूप से जाता लगा ।''

''क्या था अन्तिम वचन ?'' भगवती के साथ पाँचों भगवती का भी ध

यान उसी ओर बंध गया ।

''सलेस ने कहा, 'कामना, मनुष्य को स्थिर नहीं रहने देती है, उत्तेजित करती रहती है और जब इसकी तुष्टि नहीं हो पाती तो, दुखों का जन्म होता है। मनुष्य दुखों से बचने और कामना की तृप्ति के लिए आवेगपूर्ण कृत्यों में संलग्न हो जाता है, ऐसी स्थिति में वह किसी भी बाधा का विरोध, अपने अहितकर कार्यों से भी करने के लिए उद्धत हो जाता है, उस अवस्था में तब उसके साथ सिर्फ क्रोध हो जाता है और क्रोध का पहला कार्य ही होता है—मनुष्य की बुद्धि, उसके विवेक को उजाड़ देना । क्रोध, बुद्धि के विनाश का रंगमंच है, जहाँ विवेक, बुद्धि का साथ छोड़ देता है । बुद्धि, घटना या क्रिया के स्वरूप को नहीं पहचान पाती; क्रोध न अतीत की छवि रख पाता है, न भविष्य का विचार—तब मनुष्य के पतन के भी सारे द्वार खुल जाते हैं,....इस सब के मूल में है कामना, विषयों के प्रति आसक्ति, हमारी आत्मोन्नति में यही बाधक है ।.....यह संसार अपने आदिकाल से ही अत्यन्त दुख को सहता आ रहा है, इसके मूल में भी विषयों के प्रति उद्दाम आसक्ति ही है, देह के सुखों के प्रति तीव्र मोह । इससे मुक्त होकर ही मनुष्य सुखी और सम्पन्न समाज की संरचना कर सकेगा, और जो आसक्ति की जगह त्याग के बिना संभव नहीं ।''

''और उसके बाद तो सलेस अधिक क्षण के लिए वहाँ रुका भी नहीं होगा ?''

''सत्य ही कहा आपने देवी'' शाकम्भरी ने कुछ बुझे स्वर में कहा, ''सलेस ने घूम कर छेछन और कालीकंठ से देश लौट जाने के लिए कहा था, और यह भी कहा कि उसके लिए देस का कोई भी प्रिय जन चिन्ता न करे, क्योंकि यह समय सबको सबके लिए चिन्तित होने का समय है । देह से बंधी आत्मा में देह के गुण भी समा जाते हैं । संसार के कठोर दुख, देह को ही नहीं, आत्मा को भी निगल जाते हैं और यह दुख किसी एक व्यक्ति के चाहने से दूर नहीं होगा, सबके चाहने से होगा ।....अभी तो अंगदेश के दुखी स्वजनों को शांत करने का समय है, कोशी के उस पार मोतीराम प्रतीक्षा में व्याकुल होगा, उसे लेकर तुम दोनों देस लौट जाओ ।''

''फिर ?''

''सलेस का आदेश पाकर दोनों अवाक, कर्त्तव्यनिर्वाह में लौट पड़े थे । तब सलेस ने एक अत्यन्त क्षीण मुस्कान के साथ लौंगा को देखा था । लौंगा ने भी उसी मुस्कान के साथ सलेस की वंशी उसे थमायी थी, यह कहते हुए कि 'आर्य, आप की वंशी का स्वर अंग और मोरंग देश में नहीं, देश-देश में गूंजे ।

आर्य के संदेश, आर्यावर्त्त के संदेश बन जाएं ।'

''बस, अब आगे कुछ भी नहीं कहो शाकम्भरी ।'' भगवती ने शाकम्भरी को रोकते हुए कहा ।

भगवती के आस-पास बैठीं पाँचो भगवती की तल्लीनता टूटी तो, सब एक साथ ही बोल पड़ीं, ''ऐसा ही हो, अंग देस की यह कीर्त्ति भारत वर्ष की कीर्त्ति बने ।'' ■■■